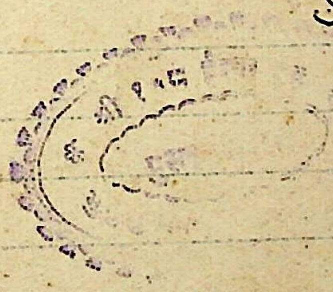
श्री राम

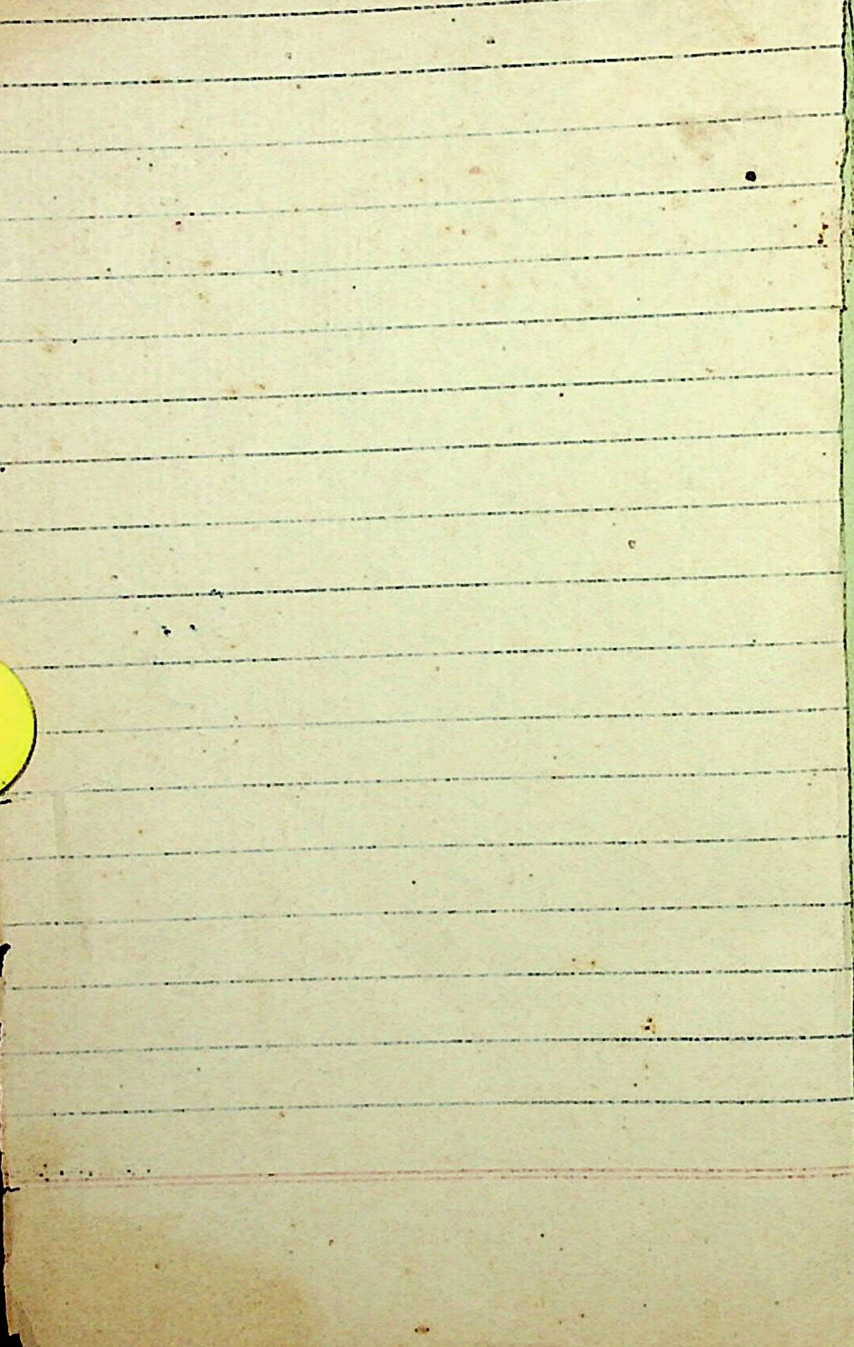
वैकान्त —— छन्दावली

प्रथम —— भाग

[illegible]

३.५





ॐ

वेदान्त-छन्दावली

प्रथम भाग

श्री स्वामी भोले बाबाजी



वेदान्त छन्दावली

प्रथम भाग

सुखी शान्त होवो, मिटै मैल जी का।
कहीं भी नहीं चिन्ह पावे दुई का॥
जहाँ देखिये दर्श हो ईश ही का।
करो पाठ वेदान्त-छन्दावली का॥

—भोला

प्रकाशक :-
जगत पुस्तक भण्डार,
दरीबा कलां-देहली
अध्यक्ष—लक्ष्मीचन्द तायल।

मूल्य ।=) छै आने
नवीं वार
जौलाई १९५४

मुद्रक—
यादव प्रिंटिंग प्रेस,
बाज़ार सीताराम, देहली

॥ ॐ श्री गुरुवे नमः ॥

निवेदन

श्रुति, स्मृति, इतिहासादिका सिद्धान्त है और सन्त-महात्माओंका भी अनुभव है कि सम्यग्ज्ञान बिना सर्व प्रकार के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष सिद्ध नहीं होता। पर-वैराग्य विना सम्यग्ज्ञान होना असम्भव है। तत्त्व विचार पर-वैराग्य का कारण है। आदर-सत्कार-पूर्वक तत्त्व के निरन्तर विचार से संसार की निस्सारता, विषय-भोगों की तुच्छता और सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मात्मभाव की दृढ़ अपरोक्षता सिद्ध होती है। बहुत-से सज्जनों की अभिलाषा थी कि हिन्दी-भाषा में पद्यरूप से कोई ऐसा वेदान्त-प्रतिपादक छोटा-सा ग्रन्थ होना चाहिये, जिसका मनन करना भाषा-प्रेमी सभी वर्ण-आश्रमों के स्त्री-पुरुषों के लिए सुलभ और बुद्धिग्राह्य हो। उन्हीं सज्जनों की इच्छानुसार 'वेदान्त-छन्दावली' नामक इस छोटे से ग्रन्थ में तत्त्वका अनेक प्रकार से निरूपण किया गया है और पर-वैराग्य का स्वरूप भी दिखलाया है। आशा है कि यह छोटी-सी पुस्तक मुमुक्षुओं और सत्य के जिज्ञासुओंको उपयोगी, तत्त्वदर्शी विद्वानों के विनोद का कारण और हरिहर विश्वेश्वर की प्रीतिका हेतु होगी।

ॐ सर्वेषां शिवं भूयात्।

सकल चराचरानुचर
भोला

ॐ

पद्य-सूची

पद्य	पृष्ठ-संख्या
मङ्गलाचरणम् [संस्कृत]	....१
हो जा अजर ! हो जा अमर!!	४
सुख से विचर !	६
आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!	८
प्राज्ञ-वाणी	....१०
कैसे भला फिर दीन हो ?	....१२
सब हानि लाभ समान है।	१४
पुतलो नहीं तू मांस की !	१६
सर्वात्म अनुसन्धान कर !	१८
बस, आपमें लवलीन हो !	२०
छोड़ूँ किसे पकड़ूँ किसे !	२२
बन्धन यही कहलाय है।	२४
इच्छा बिना ही मुक्त है।	२६
ममता अहन्ता छोड़ दे।	२८
मत भोग में आसक्त हो।	३०
होता तुरत ही शान्त है।	३२
निज आत्म में डट जाय है।	३४
यह ही परम पुरुषार्थ है।	३६
संसार से सो छुट गया।	३८
सोच का क्या काम है ?	४०
अद्वैत है, एकत्व है।	४२
शान्ति अक्षय पायगा।	४४
विरला कहीं पर पाय है।	४६
सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है।	४८
सब कर चुका! सब धरचुका!!	५०
भय शोक सब भग जाय है!!	५२
उससा सुखी क्या अन्य है ?	५४
करना उसे क्या शेष है ?	५६
सो धीर शोभा पाय है।	५८
मर से अमर हो जाय है।	६०
साम्राज्य अविचल पाय है।	६२
है जन्म उसका ही सफल।	६४
भव-सिन्धु से सो पार है।	६६
सो धन्य है, सो मन्य है।	६८
अवधूत किसका नाम है ?	७०
अवधूत की पहिचान क्या ?	७२
वैसा हि विरला जानता।	७४

—: ❀ :—

॥ ॐ ॥



अवधूत शिरोमणि श्री शुकदेवजी



श्रीपरमात्मने नमः

वेदान्त-छन्दावली



॥ मङ्गलाचरणम् ॥

निर्वासनं निराकाङ्क्षं सर्वदोषविवर्जितम् ।
निरालम्बं निरातङ्कं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१॥
निर्ममं निरहङ्कारं समलोष्टाश्मकाञ्चनम् ।
समदुःखसुखं धीरं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥२॥
अविनाशिनमात्मानं ह्येकं विज्ञाय तत्त्वतः ।
वीतरागभयक्रोधं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥३॥
नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित् ।
एवं विज्ञाय सन्तुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥४॥
समस्तं कल्पनामात्रं ह्यात्मा मुक्तः सनातनः ।
इति विज्ञाय सन्तृप्तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥५॥

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं कामसङ्कल्पवर्जितम् ।
हेयोपादेयहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥६॥
व्यामोहमात्रविरतौ स्वरूपादानमात्रतः ।
वीतशोकं निरायासं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥७॥
आत्मा ब्रह्मेतिनिश्चित्य भावाभावौ च कल्पितौ
उदासीनं सुखासीनं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥८॥
स्वभावेनैव यो योगी सुखं भोगं न वाञ्छति ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥९॥
नैव निन्दाप्रशंसाभ्यां यस्य विक्रियते मनः ।
आत्मक्रीडं महात्मानं ह्यवधूत नमाम्यहम् ॥१०॥
नित्यं जाग्रदवस्थायां स्वप्नवद्योऽवतिष्ठते ।
निश्चिन्तं चिन्मयात्मानं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥११॥
द्वेष्यंनास्तिप्रियंनास्तिनास्तियस्यशुभाशुभम् ।
भेदज्ञानविहीनं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१२॥
जडं पश्यति नो यस्तु जगत्पश्यति चिन्मयम् ।
नित्ययुक्तं गुणातीतं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१३॥
यो हि दर्शनमात्रेण पवते भुवनत्रयम् ।
पावनं जङ्गमं तीर्थं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१४॥

सर्वपूज्यं सदा पूर्णं ह्यखण्डानन्दविग्रहम् ।
स्वप्रकाशं चिदानन्दं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१५॥
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निर्मलं परमामृतम् ।
अनन्तं जगदाधारं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१६॥
सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।
सच्चिदानन्दरूपं तं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१७॥
तिष्ठन्गच्छन्स्पृशञ्जिघ्रन्नपि तल्लेपवर्जितम् ।
अजडं वासनाहीनं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१८॥
विशेषं सम्परित्यज्य सन्मात्रं यदलेपकम् ।
एकरूपं महारूपं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥१९॥
आभासमात्रमेवेदं न सन्नासज्जगत्त्रयम् ।
इत्यन्यकलनाहीनं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥२०॥
दिकालाद्यनवच्छिन्नं स्वच्छं नित्योदितं ततम् ।
सर्वार्थमयमेकार्थं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥२१॥



हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(१)

जो मोक्ष है तू चाहता, विष सम विषय तज तात रे !
आर्जव क्षमा संतोष शम दम पी सुधा दिन रात रे !!
संसार जलती आग है, इस आग से झट भाग कर
आ शान्त शीतल देश में, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(२)

पृथिवी नहीं, जल भी नहीं, नहिं अग्नि तू नहिं है पवन ।
आकाश भी तू है नहीं, तू नित्य है चैतन्यघन ॥
इन पांचका साक्षी सदा, निर्लेप है तू सर्वपर ।
निज रूपको पहिचानकर, हो जा अजर ! हो जा अमर ॥

(३)

चैतन्यको कर भिन्न तनसे, शाँति सम्यक् पायगा ।
होगा तुरत ही तू सुखी, संसारसे छुट जायगा ॥
आश्रम तथा वर्णादिका, किञ्चित् न तू अभिमान कर ।
सम्बन्ध तज दे देहसे, हो जा अजर ! हो जा अमर ॥

(४)

नहि धर्म है न अधर्म तुझमें दुःख-सुख भी लेश ना ।
हैं ये सभी अज्ञानमें कर्तापना, भोक्तापना ॥
तू एक द्रष्टा सर्वका, इस दृश्यसे है दूरतर ।
पहिचान अपने आपको, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(५)

कर्तृत्वके अभिमान काले सर्पसे है तू डसा।
नहिं जानता है आपको, भव-पाश में इससे फंसा ॥
कर्ता न तू तिहुँ काल में, श्रद्धा-सुधाका पान कर।
पीकर उसे हो जा सुखी, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(६)

'मैं शुद्ध हूं' 'मैं बुद्ध हूं' ज्ञानाग्नि ऐसी ले बला।
मत पाप, मत सन्तोष कर, अज्ञान-वनको दे जला ॥
ज्यों सर्प रस्सी मांहि जिसमें भासता ब्रह्माण्डभर।
सो बोध-सुख तू आप है, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(७)

अभिमान रखता मुक्ति का, सो धीर निश्चय मुक्त है।
अभिमान करता बन्धका, सो मूढ़ बन्धन-युक्त है ॥
'जैसी मती' वैसी गती, लोकोक्ति यह सच मानकर।
भव-बन्ध से निर्मुक्त हो, हो जा अजर ! हो जा अमर !!

(८)

आत्मा अमल, साक्षी अचल, विभु, पूर्ण, शाश्वत मुक्त है।
चेतन, असंगी, निस्पृही, शुचि, शान्त, अच्युत तृप्त है ॥
निज रुपके अज्ञान से, जन्मा करे, फिर जाय मर।
भोला ! स्वयं को जानकर, हो जा अजर ! होजा अमर !!

सुखसे विचर !

(१)

'कूटस्थ हूं' अद्वैत हूं, मैं बोध हूं, मैं नित्य हूं।
अक्षय तथा निस्संग आत्मा, एक, शाश्वत, सत्य हूं ॥
नहिं देह हूं, नहिं इन्द्रियां, हूं स्वच्छ से भी स्वच्छतर'।
ऐसी किया कर भावना, निःशोक हो सुखसे विचर !!

(२)

'मैं देह हूं' फांसी महा, इस पाश में जकड़ा गया।
चिरकालतक फिरता रहा, जन्मा किया फिर मर गया।
'मैं बोध हूं' ज्ञानास्त्र ले अज्ञानका दे काट सर।
स्वच्छन्दहो, निर्द्वन्द्व हो, आनन्द कर, सुखसे विचर !!

(३)

निष्क्रिय सदा निस्संग तू, कर्ता नहीं भोक्ता नहीं।
निर्भय, निरञ्जन है अचल, आता नहीं, जाता नहीं ॥
मत राग कर, मत द्वेषकर, चिन्तारहित हो जा निडर।
आशा किसी की क्यों करे, संतृप्त हो सुखसे विचर !!

(४)

यह विश्व तुझसे व्याप्त है, तू विश्व में भरपूर है।
तू वार है, तू पार है, तू पास है, तू दूर है ॥
उत्तर तुही, दक्षिण तुही, तू है इधर, तू है उधर।
दे त्याग मन की क्षुद्रता, निःशंक हो सुखसे विचर !!

(५)

'निरपेक्ष द्रष्टा सर्वका, इस दृश्य से तू अन्य है।
अक्षुब्ध है, चिन्मात्र है, सुख-सिन्धु-पूर्ण, अनन्य है ॥
छः उर्मियों से है रहित, मरता नहीं तू है अमर' ।
ऐसी क्रिया कर भावना, निर्भय सदा सुखसे विचर !!

(६)

आकार मिथ्या जान सब, 'आकार बिनु तू है अचल।
जीवन मरण है कल्पना, तू एकरस निर्मल अटल ॥
ज्यों जेवरी में सर्प त्यों अध्यस्त तुझमें चर अचर'।
ऐसी क्रिया कर भावना, निश्चिन्त हो सुख से विचर !!

(७)

दर्पण धरें जब सामने, तब ग्राम उसमें भासता।
दर्पण हटा लेते जभी, तब ग्राम होता लापता ॥
ज्यों ग्राम दर्पण मांहि, तुझमें विश्व त्यों आता नज़र।
संसार को मत देख, निजको देख तू, सुखसे विचर !!

(८)

आकाश घटके बाह्य है, आकाश घट भीतर बसा।
सब विश्वमें है पूर्ण, तू ही बाह्य भीतर एकसा ॥
श्रुति, सन्त, गुरुके वाक्य ये सच मान रे विश्वास कर।
भोला ! निकल जग-जाल से, निर्बन्ध हो सुखसे विचर !!

आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(१)

छूता नहीं मैं देह फिर भी देह तीनों धारता ।
रचना करूं मैं विश्वकी, नहिं विश्वसे कुछ वासता ॥
कर्तार हूं मैं सर्वका, यह सर्व मेरा कार्य है ।
फिर भी न मुझमें सर्व है, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(२)

नहिं ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेयमेंसे एक भी है वास्तविक ।
मैं एक केवल सत्य हूं, ज्ञानादि तीनों काल्पनिक ॥
अज्ञानसे जिस मांहि भासे ज्ञान, ज्ञाता ज्ञेय है ।
सो मैं निरञ्जन देव हूं, आश्चर्य है ! आश्चर्य !!

(३)

है दुःख सारा द्वैतमें, कोई नहीं उसकी दवा ।
यह दृश्य सारा है मृषा, फिर द्वैत कैसा वाह ! वा !!
चिन्मात्र हूं मैं एकरस, मम कल्पना यह दृश्य है ।
मैं कल्पना से बाह्य हूं आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(४)

नहिं बन्ध है नहिं मोक्ष है, मुझमें न किञ्चित् भ्रान्ति है ।
माया नहीं काया नहीं, परिपूर्ण अक्षय शान्ति है ॥
मम कल्पना है शिष्य मेरी कल्पना आचार्य है ।
साक्षी स्वयं हूं सिद्ध मैं, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(५)

सशरीर सारे विश्वकी, किञ्चित् नहीं सम्भावना ।
शुद्धात्म मुझ चिन्मात्र में, बनती नहीं है कल्पना ॥
तिहुंकाल, तीनों लोक, चौदह भुवन माया-कार्य है ।
चिन्मात्र में निस्संग हूं, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(६)

रहता जनों में, द्वैतका फिर भी न मुझमें नाम है ।
दंगल मुझे जंगल जचे, फिर प्रीतिका क्या काम है ?
'मैं देह हूं' जो मानता, सो प्रीति करि दुख पाय है ।
चिन्मात्र में भी सङ्ग हो, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(७)

नहिं देह मैं, नहिं जीव मैं, चैतन्यघन मैं शुद्ध हूं ।
बन्धन यही मुझ मांहि था, थी चाह मैं जीता रहूं ॥
ब्रह्माण्डरूपी लहर उठ उठ कर बिला फिर जाय है ।
परिपूर्ण मुझ सुखसिन्धु में, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

(८)

निस्सीम मुझ चित्सिन्धु में जब मन-पवन होजाय लय ।
व्यापार लय हो जीवका, जग नाव भी होवे विलय ॥
इस भांति से करके मनन, नर प्राज्ञ चुप हो जाय है ।
भोला ! न अब तक चुप हुआ, आश्चर्य है ! आश्चर्य है !!

प्राज्ञ-वाणी

(१)

मैं हूं निरञ्जन शान्त, निर्मल, बोध, माया से परे।
हूं कालका भी काल मैं, मन बुद्धि, काया से परे॥
मैं तत्त्व अपना भूलकर, व्यामोह में था पड़ गया।
श्रुति, सन्त, गुरु, ईश्वर कृपा, अब मुक्त बन्धनसे भया॥

(२)

जैसे प्रकाशूँ देह मैं, त्योंही प्रकाशूं विश्व सब।
हूं इसलिये मैं विश्व सब, अथवा नहीं हूं विश्व अब॥
सशरीर सारे विश्वका है, त्याग मैंने कर दिया।
सब ठौर मैं ही दीखता हूं ब्रह्म केवल नित नया॥

(३)

जैसे तरंगें, झाग, बुद्बुद्, सिन्धु से नहिं भिन्न कुछ।
मुझ आत्म से उत्पन्न जग, मुझसे नहीं है अन्य कुछ॥
ज्यों तन्तुओं से भिन्न पटकी है नहीं सत्ता कहीं।
मुझ आत्मसे इस विश्वकी त्यों भिन्न सत्ता है नहीं॥

(४)

ज्यों ईखके रस मांहि शक्कर व्याप्त होकर पूर्ण है।
आनन्दघन मुझ आत्म से सब विश्व त्यों परिपूर्ण है॥
अज्ञान से ज्यों रज्जु अहि हो, ज्ञान से हट जाय है।
अज्ञान निजसे जग बना, निज ज्ञान से मिट जाय है॥

(५)

जग है प्रकाशक तत्त्व मम, तो क्यों न होऊं प्रकाश मैं।
जब विश्वभर को भासता, तो आप भी हूं भास मैं॥
ज्यों सीपमें चांदी मृषा, मरुभूमि में पानी यथा।
अज्ञानसे कल्पा हुआ, यह विश्व मुझमें है तथा॥

(६)

ज्यों मृत्तिकासे घट बने, फिर मृत्तिकामें होय लय।
उठती यथा जल से तरंगें, होयं फिर जल में विलय॥
कंकण, कटक बनते कनक से, लय कनक में हों यथा।
मुझसे निकलकर विश्व यह मुझमांहि लय होता तथा॥

(७)

होवे प्रलय इस विश्वका, मुझको न कुछ भी त्रास है।
ब्रह्मादि सबका नाश हो, मेरा न होता नाश है॥
मैं सत्य हूं, मैं ज्ञान हूँ, मैं ब्रह्म देव अनन्त हूं।
कैसे भला हो भय मुझे, निर्भय सदा निश्चिन्त हूँ॥

(८)

आश्चर्य है, आश्चर्य है, मैं देहवाला हूं यदपि।
आता न जाता हूं कहीं, भूमा अचल हूं मैं तदपि॥
सुन प्राज्ञ वाणी चित्त दे, निज रूप में अब जाग जा।
भोला! प्रमादी मत बने, भव-जेल से उठ भाग जा॥

कैसे भला फिर दीन हो ?

(१)

ज्यों सीप की चांदी लुभाती, सीपके जाने बिना।
त्यों ही विषय सुखकर लगे हैं, आत्म पहिचाने बिना॥
अज, अमर आत्मा जानकर, जो आत्म में तल्लीन हो।
सब रस विरस लगते उसे, कैसे भला फिर दीन हो ?

(२)

सुन्दर परम आनन्दघन, निज आत्म जो नहिं जानता।
आसक्त होकर भोग में, सो मूढ ही सुख मानता॥
ज्यों सिन्धु में से लहर, जिससे विश्व उपजे लीन हो।
'मैं हूं वही' जो मानता, कैसे भला फिर दीन हो ?

(३)

सब प्राणियों में आपको, सब प्राणियों को आप में।
जो प्राज्ञ मुनि है जानता, कैसे फंसे फिर पाप में॥
अक्षय सुधा के पान में, जिस सन्तका मन लीन हो।
क्यों कामवश सो हो विकल, कैसे भला फिर दीन हो ?

(४)

है काम वैरी ज्ञानका, बलवान के बल को हरे।
नर धीर ऐसा जानकर, क्यों भोगकी इच्छा करे ?
जो आज है कल ना रहे, प्रत्येक क्षण ही क्षीण हो।
ऐसे विनश्वर भोग में, कैसे भला फिर दीन हो ?

(५)

तत्त्वज्ञ विषय न भोगता, ना खेद मनमें मानता।
निज आत्म केवल देखता, सुख दुःख सम है जानता॥
करता हुआ भी नहिं करे, सशरीर भी तनहीन हो।
निन्दा प्रशंसा सम जिसे, कैसे भला फिर दीन हो ?

(६)

सब विश्व मायामात्र है, ऐसा जिसे विश्वास है।
सो मृत्यु सम्मुख देखकर, लाता न मनमें त्रास है॥
नहिं आश जीनेकी जिसे हो त्रास मरनेकी न हो।
हो तृप्त अपने आपमें, कैसे भला फिर दीन हो ?

(७)

नहिंग्राह्य कुछ नहिं त्याज्य कुछ, अच्छा बुरा नहिं है कहीं।
यह विश्व है सब कल्पना, बनता बिगड़ता कुछ नहीं॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, क्यों अन्य के स्वाधीन हो ?
संतुष्ट नर निर्द्वन्द्व सो, कैसे भला फिर दीन हो ?

(८)

श्रुति संत सब ही कह रहे, ब्रह्मादि गुरु सिखला रहे।
श्रीकृष्ण भी बतला रहे, शुक आदि मुनि दिखला रहे॥
सुखसिन्धु अपने पास है, सुखसिन्धु-जलकी मीन हो।
भोला ! लगा डुबकी सदा, मत हो दुःखी, मत दीन हो॥

सब हानि-लाभ समान है !

(१)

संसार कल्पित मानता, नहिं भोग में अनुरागता ।
सम्पत्ति पा नहिं हर्षता, आपत्ति से नहिं भागता ॥
निज आत्म में संतृप्त है, नहिं देहका अभिमान है ।
ऐसे विवेकी के लिये, सब हानि-लाभ समान है !

(२)

संसारवाही बैल सम, दिनरात बोझा ढोय है ।
त्यागी तमाशा देखता, सुखसे जग है सोय है ॥
समचित्त है, स्थिरबुद्धि, केवल आत्म-अनुसन्धान है ।
तत्त्वज्ञ ऐसे धीरको, सब हानि-लाभ समान है !

(३)

इन्द्रादि जिस पदके लिये, करते सदा ही चाहना ।
उस आत्मपदको पायके, योगी हुआ निर्वासना ॥
है शोक कारण राग, कारण रागका अज्ञान है ।
अज्ञान जब जाता रहा, सब हानि-लाभ समान है !

(४)

आकाश से ज्यों धूम का, सम्बन्ध होता है नहीं ।
त्यों पुण्य अथवा पाप कों, तत्त्वज्ञ छूता है नहीं ॥
आकाश सम निर्लेप जो, चैतन्यघन प्रज्ञान है ।
ऐसे असङ्गी प्राज्ञको, सब हानि-लाभ समान है !

(५)

यह विश्व सब है आत्म ही इस भांतिसे जो जानता ।
यश वेद उसका गा रहे, प्रारब्धवश वह वर्तता ॥
ऐसे विवेकी सन्तको न निषेध है, न विधान है ।
सुख-दुःख दोनों एकसे, सब हानि-लाभ समान है !

(६)

सुर, नर, असुर, पशु आदि जितने जीव हैं संसारमें ।
इच्छा अनिच्छा वश हुए सब लिप्त हैं व्यवहारमें ॥
इच्छा अनिच्छासे छुटा बस एक संत सुजान है ।
उस सन्त निर्मल चित्तको, सब हानि-लाभ समान है !

(७)

विश्वेश अद्वय आत्मको, विरला जगतमें जानता ।
जगदीशको जो जानता, नहिं भय किसी से मानता ॥
ब्रह्माण्डभरको प्यार करता, विश्व जिसका प्राण है ।
उस विश्व-प्यारे के लिये, सब हानि-लाभ समान है !

(८)

कोई न उसका शत्रु है, कोई न उसका मित्र है ।
कल्याण सबका चाहता है, सर्व का सन्मित्र है ॥
सब देश उसको एक-से, बस्ती भले सुनसान है ।
भोला ! उसे फिर भय कहां ! सब हानि-लाभ समान है !

पुतली नहीं तू माँसकी !

(१)

जहँ विश्व-लय हो जाय, तहँ भ्रम-भेद सब बह जाय है।
अद्वय स्वयं ही सिद्ध केवल एक ही रह जाय है॥
सो ब्रह्म है तू है वही, पुतली नहीं तू माँस की !
नहिं वीर्य तू, नहिं रक्त तू नहिं धोंकनी तू सांस की॥

(२)

जहँ हो अहन्ता लीन, तहँ रहता नहीं जीवत्व है।
अक्षय निरामय शुद्ध संवित् शेष रहता तत्त्व है॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नहीं तू माँसकी !
नहिं जन्म तुझमें नहिं मरण, नहिं पोल है आकाशकी॥

(३)

दिक्काल जहँ नहिं भासते, होता जहाँ नहिं शून्य है।
सच्चित् तथा आनन्द आत्मा भासता परिपूर्ण है॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नहीं तू माँसकी !
नहिं त्याग तुझमें नहिं ग्रहण, नहिं गाँठ है अध्यासकी॥

(४)

चेष्टा नहीं, जड़ता नहीं, नहिं आवरण, नहिं तम जहां।
अव्यय अखण्डित ज्योति शाश्वत जगमगाती सम जहां॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नहीं तू माँसकी !
कैसे तुझे फिर बन्ध हो, नहिं मूर्त्ति तू आभासकी॥

(५)

जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है, नहिं व्योम पंचक है जहां ।
परसे परे ध्रुव शांत शिव ही नित्य भासे हैं वहां ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नहीं तू माँसकी !
गुण तीनसे तू है परे, चिन्ता तुझे क्या नाशकी ?

(६)

जो ज्योतियोंकी ज्योति है, सबसे प्रथम जो भासता ।
अक्षर सनातन दिव्य दीपक सर्व विश्व प्रकाशता ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नहीं तू मसाँकी !
तुझको प्रकाशे कौन, तू है दिव्य मूर्ति प्रकाशकी ॥

(७)

शङ्का जहां उठती नहीं, किञ्चित् जहाँ न विकार है ।
आनन्द अक्षयसे भरा, नित ही नया भंडार है ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नहीं तू माँसकी !
फिर शोक तुझमें हो कहाँ, तू है अवधि संन्यासकी ॥

(८)

जिस तत्त्वको कर प्राप्त परदा मोहका फट जाय है ।
जल जायँ हैं सब कर्म, चिज्जड़-ग्रन्थि जड़ कट जाय है ॥
सो ब्रह्म है, तू है वही, पुतली नहीं तू माँसकी !
भोला ! स्वयं हो तृप्त, सुतली काट दे भव-पाशकी ॥

सर्वात्म अनुसन्धान कर !

(१)

मायारचित यह देह है, मायारचित ही गेह है।
आसक्ति फांसी है कड़ी, मजबूत रस्सी स्नेह है॥
भय भेदमें है सर्वदा, मत भेदपर तू ध्यान धर!
सर्वत्र आत्मा देख तू, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

(२)

माया महा है मोहनी, बन्धन-अमंगल-कारिणी।
व्यामोह-कारिणि, शोकदा, आनन्द-मंगल हारिणी॥
माया मरीको मार दे, मत देहमें अभिमान कर!
दे भेद मनसे मेट सब, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

(३)

जो ब्रह्म सबमें देखते हैं, ध्यान धरते ब्रह्मका।
भव-जालसे हैं छूटते, साक्षात् करें हैं ब्रह्मका॥
नर मूढ़ पाता क्लेश है, अपना पराया मानकर!
ममता अहंता त्याग दे, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

(४)

वैरी भयङ्कर है विषय, कीड़ा न बन तू भोगका।
चञ्चलपना मनका मिटा, अभ्यास करके योगका॥
यह चित्त होता मुक्त है, 'सब ब्रह्म है' यह जानकर!
कर दर्श सबमें ब्रह्मका, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

(५)

जब नाश होता चित्तका, योगी महा फल पाय है।
ज्यों पूर्ण शशि है शोभता, सब विश्वमें भर जाय है॥
चिन्मात्र संवित् शुद्ध जलमें, नित्य ही तू स्नान कर!
मन मैल सारा डाल धो, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

(६)

जो दीखता, होता स्मरण, जो कुछ श्रवणमें आय है।
मिथ्या नदी मरु-भूमिकी है मूढ़ धोखा खाय है॥
धोका न खा, सुखपूर्ण आत्मा-सिन्धुका जल पान कर!
प्यासा न मर, पीयूष पी, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

(७)

ममतारहित, निर्द्वन्द्व हो, भ्रम-भेद सारे दे हटा।
मत राग कर, मत द्वेष कर, सब दोष मनके दे मिटा॥
निर्मूल कर दे वासना, निज आत्मका कल्याण कर!
भांडा दुईका फोड़ दे, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

(८)

देहात्म होती बुद्धि जब, धन मित्र सुत हो जायँ हैं।
ब्रह्मात्म होती दृष्टि जब, धन आदि सब खो जायँ हैं॥
मल-मूत्रके भण्डार नश्वर देहको पहिचान कर!
भोला! प्रमादी मत बने, सर्वात्म अनुसन्धान कर!!

बस, आपमें लवलीन हो !

(१)

तू शुद्ध है, तेरा किसीसे लेश भी नहिं संग है।
क्या त्यागना तू चाहता ? चिन्मात्र तू निस्संग है॥
निस्संग निजको जान ले, मत हो दुखी मत दीन हो।
इस देहसे तज संग दे, बस, आपमें लवलीन हो !!

(२)

जैसे तरंगें बुलबुले, झागादि बनते सिन्धुसे।
त्यों ही चराचर विश्व बनता, एक तुझ चित्सिन्धु से॥
तू सिन्धु-सम है एक-सा, नहिं जीर्ण हो न नवीन हो।
अपना पराया भेद तज, बस, आपमें लवलीन हो !!

(३)

अपरोक्ष यद्यपि दीखता, नहिं वस्तुतः संसार है।
तुझ शुद्ध निर्मल तत्त्वमें, सम्भव न कुछ व्यापार है॥
ज्यों सर्प रस्सीका बना, फिर रज्जुमें ही लीन हो।
सब विश्व लय कर आपमें, बस, आपमें लवलीन हो !!

(४)

सुख-दुःख दोनों जान सम, आशा-निराशा एक-सी।
जीवन-मरण भी एक-सा, निन्दा-प्रशंसा एक-सी॥
हर हालमें खुशहाल रह, निर्द्वन्द्व चिन्ता-हीन हो।
मत ध्यान कर तू अन्यका, बस, आपमें लवलीन हो !!

(५)

भूमा अचल, शाश्वत अमल सम, ठोस है तू सर्वदा ।
यह देह है पोला घड़ा, बनता विगड़ता है सदा ॥
निर्लेप रह जल विश्वमें, मत विश्व-जलकी मीन हो ।
अनुरक्त मत हो देहमें, बस, आपमें लवलीन हो !!

(६)

यह विश्व लहरोंके सदृश, तू सिन्धु ज्यों गम्भीर है ।
बनते विगड़ते विश्व हैं, तू नित्य निश्चल ही रहै ॥
मत विश्वसे सम्बन्ध रख, मत भोगके आधीन हो ।
नित आत्म अनुसन्धान कर, बस, आपमें लवलीन हो !!

(७)

तू सीप सच्ची वस्तु है, यह विश्व चांदी है मृषा ।
तू वस्तु सच्ची रज्जु है, यह विश्व अहिनी है मृषा ॥
इसमें नहीं सन्देह कुछ, प्यारे! न श्रद्धाहीन हो ।
विश्वास कर, विश्वास कर, बस, आपमें लवलीन हो !!

(८)

सब भूत तेरे माहिं हैं, तू सर्व भूतों माहिं है ।
तू सूत्र सबमें पूर्ण है, तेरे सिवा कुछ नाहिं है ॥
यदि हो न सत्ता एक तो, फिर चर अचर कुछ भी न हो ।
भोला ! यही सिद्धान्त है, बस, आपमें लवलीन हो !!

छोड़ूँ किसे ? पकड़ूँ किसे ?

(१)

अक्षुब्ध मुझ अम्बोधिमें ये विश्व नावें चल रहीं।
मन वायुकी प्रेरी हुई, मुझ सिन्धुमें हलचल नहीं॥
मन वायुसे मैं हूं परे, हिलता नहीं मन वायुसे।
कूटस्थ ध्रुव अक्षोभ हूं, छोड़ूँ किसे ? पकड़ूँ किसे ?

(२)

निस्सीम मुझ सुखसिन्धुमें, जग-वीचियाँ उठती रहें।
बढ़ती रहें घटती रहें, बनती रहें मिटती रहें॥
अव्यय, रहित उत्पत्तिसे हूँ, वृद्धिसे अरु अस्तसे।
निश्चल सदा ही एक-सा, छोड़ूं किसे ? पकड़ूँ किसे ?

(३)

अध्यक्ष हूं मैं विश्वका, यह विश्व मुझमें कल्पना।
कल्पे हुएसे सत्यकी, होती कभी कुछ हानि ना॥
अति शान्त, विन आकार हूं, पर रूपसे पर नामसे।
अद्वय अनामय तत्त्व मैं, छोंड़ूं किसे ? पकड़ुं किसे ?

(४)

देहादि नहिं हैं आत्ममें, नहीं आत्म है देहादिमें।
आत्मा निरञ्जन एक-सा है, अन्तमें क्या आदिमें॥
निस्संग अच्युत निस्पृही, अति दूर सर्वोपाधिसे।
सो आत्म अपना आप है, छोड़ूं किसे ? पकड़ूं किसे ?

व
६६४

(५)

चिन्मात्र मैं ही सत्य हूँ, यह विश्व बन्ध्यापुत्र है।
नहिं बांझ सुत जनती कभी, तब विश्व कहनेमात्र है॥
जब विश्व कुछ है ही नहीं, सम्बन्ध क्या फिर विश्व से।
सम्बन्ध ही जब है नहीं, छोड़ूं किसे ? पकड़ूं किसे ?

(६)

नहिं देह मैं, नहिं इन्द्रियां, मन भी नहीं, नहिं प्राण हूं।
नहिं चित्त हूं, नहिं बुद्धि हूँ, नहिं जीव, नहि विज्ञान हूँ॥
कर्ता नहीं, भोक्ता नहीं, निर्मुक्त हूं मैं कर्म से।
निरुपाधि संवित् शुद्ध हूँ, छोड़ूं किसे ? पकड़ूं किसे ?

(७)

है देह मुझमें दीखता, पर देह मुझमें है नहीं।
द्रष्टा कभी नहिं दृश्यसे, परमार्थसे मिलता कहीं॥
नहीं त्याज्य हूँ, नहिं ग्राह्य हूँ पर हूं ग्रहणसे त्यागसे।
अक्षर परम आनन्दघन, छोड़ूं किसे ? पकड़ूं किसे ?

(८)

अज्ञानमें रहते सभी, कर्तापना, भोक्तापना।
चिद्रूप मुझमें लेश भी, सम्भव नहीं है कल्पना॥
यों स्वात्म अनुसन्धान कर, छूटे चतुर भवबन्धसे।
भोला ! न अब संकोच कर, छोड़ूं किसे ? पकड़ूं किसे ?

बन्धन यही कहलाय है।

(१)

'मैं' 'तू' नहीं पहचानना, विषयी विषय नहिं जानना।
आत्मा अनात्मा मानना, निज अन्य नहिं पहिचानना॥
चेतन अचेतन जानना, अति पाप माना जाय है।
सन्ताप यह ही देय है, बन्धन यही कहलाय है॥

(२)

क्या ईश है? क्या जीव है? यह विश्व कैसे बन गया?
पावन परम निस्संग आत्मा, संगमें क्यों सन गया?
सुख-सिन्धु आत्मा एकरस, सो दुःख कैसे पाय है?
कारण न इसका जानना, बन्धन यही कहलाय है॥

(३)

इस देहको 'मैं' मानना, या इन्द्रियाँ 'मैं' जानना।
अभिमान करना चित्तमें, या बुद्धि 'मैं' पहचानना॥
देहादिके अभिमानसे, नर मूढ़ दुःख उठाय है।
बहु योनियोंमें जन्मता, बन्धन यही कहलाय है॥

(४)

बेड़ी कठिन है कामना, आसक्ति दृढ़तम जाल है।
ममता भयंकर राक्षसी, संकल्प काल व्याल है॥
इन शत्रुओंके वश हुआ, जन्मे मरे पछताय है।
सुखसे कभी सोता नहीं, बन्धन यही कहलाय है॥

(५)

यह है भला, यह है बुरा, यह पुण्य है, यह पाप है।
यह लाभ है, यह हानि है, यह शीत है, यह ताप है॥
यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है, यह आय है, यह जाय है।
इस भांति मनकी कल्पना, वन्धन यही कहलाय है॥

(६)

श्रोत्रादिको 'मैं' मान नर, शब्दादि में फंस जाय है।
अनुकूलमें सुख मानता, प्रतिकूलसे दुःख पाय है॥
पाकर विषय है हर्षता, नहिं पाय तब घबराय है।
आसक्त होना भोगमें, वन्धन यही कहलाय है॥

(७)

सत्संग में जाता नहीं, नहिं वेद-आज्ञा मानता।
सुनता न हित उपदेश अपनी तान उलटी तानता॥
शिष्टाचरण करता नहीं, दुष्टाचरण ही भाय है।
कहते इसे हैं मूढ़ता, बन्धन यही कहलाय है॥

(८)

यह चित्त जबतक चाहता, या विश्वमें है दौड़ता।
करता किसीको है ग्रहण, अथवा किसीको छोड़ता॥
सुख पायके है हर्षता, दुख देखकर सकुचाय है।
भोला ! न तबतक मोक्ष हो, बन्धन यही कहलाय है॥

इच्छा बिना ही मुक्त है ?

(१)

ममता नहीं सुत-दारमें, नहिं देहमें अभिमान है।
निन्दा प्रशंसा एक-सी, सम मान अरु अपमान है॥
जो भोग आते भोगता, होता न विषयासक्त है।
निर्वासना निर्द्वन्द्व सो, इच्छा बिना ही मुक्त है !!

(२)

सब विश्व अपना जानता, या कुछ न अपना मानता।
क्या मित्र हो क्या शत्रु सब को एक सम सन्मानता॥
सब विश्वका है भक्त जो, सब विश्व जिसका भक्त है।
निर्हेतु सबका सुहृद सो, इच्छा बिना ही मुक्त है !!

(३)

रहता सभीके संग पर करता न किञ्चित् संग है।
है रंग पक्केमें रँगा, चढ़ता न कच्चा रंग है॥
है आपमें संलग्न, अपने आप में अनुरक्त है।
है आपमें सन्तुष्ट, सो इच्छा बिना ही मुक्त है !!

(४)

सुन्दर कथाएँ जानता देता घने दृष्टान्त है।
देता दिखायी भ्रान्त-सा, भीतर परम ही शान्त है॥
नहिं राग है, नहिं द्वेष है, सब दोषसे निर्मुक्त है।
करता सभीको प्यार, सो इच्छा बिना ही मुक्त है !!

(५)

नहिं दुःखसे घबराय है, सुखकी जिसे नहिं चाह है।
सन्मार्गमें विचरे सदा, चलता न खोटी राह है॥
पावन परम अन्तःकरण, गम्भीर धीर विरक्त है।
शम दम तमासे युक्त सो इच्छा बिना ही मुक्त है!!

(६)

जीवन जिसे रुचता नहीं, नहिं मृत्युसे घबराय है।
जीवन मरण है कल्पना, अपना न कुछ भी जाय है॥
अक्षय, अजर शाश्वत, अमर, निज आत्ममें संतृप्त है।
ऐसा विवेकी प्राज्ञ नर, इच्छा बिना ही मुक्त है!!

(७)

माया नहीं, काया नहीं, वन्ध्या रचा यह विश्व है।
नहिं नाम ही, नहिं रूप ही, केवल निरामय तत्त्व है॥
यह ईश है, यह जीव माया माँहि सब संक्लृप्त है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, इच्छा बिना ही मुक्त है!!

(८)

कर्तव्य था सो कर लिया, करना न कुछ भी शेष है।
था प्राप्त करना पा लिया, पाना न अब कुछ लेश है॥
जो जानना था जानकर, स्व-स्वरूप मैं संयुक्त है।
भोला! नहीं सन्देह, सो इच्छा बिना ही मुक्त है!!

ममता अहंता छोड़ दे।

(१)

पूरे जगत् के कार्य कोई भी कभी नहिं कर सका।
शीतोष्ण से सुख-दुःख से कोई भला क्या तर सका?
निस्संग हो, निश्चिन्त हो, नाता सभी से तोड़ दे।
करता भले रह देहसे, ममता अहंता छोड़ दे॥

(२)

संसारियोंकी दुर्दशाको देख मनमें शान्त हो।
मत आशका हो दास तू, मत भोग सुखमें भ्रान्त हो॥
निज आत्म सच्चा जानकर, भाँडा जगत्का फोड़ दे।
अपना पराया मान मत, ममता अहंता छोड़ दे॥

(३)

नश्वर अशुचि यह देह तीनों तापसे संयुक्त है।
आसक्त हड्डी मांसपर, होना तुझे नहिं युक्त है॥
पावन परम निज आत्ममें, मन वृत्ति अपनी जोड़ दे।
सन्तोष समता कर ग्रहण, ममता अहंता छोड़ दे॥

(४)

है काल ऐसा कौन-सा, जिसमें न कोई द्वन्द्व है।
बचपन तरुणपन वृद्धपन कोई नहीं निर्द्वन्द्व है॥
कर पीठ पीछे द्वन्द्व सब, मुख आत्मकी दिश मोड़ दे।
कैवल्य निश्चय पायगा, ममता अहंता छोड़ दे॥

(५)

योगी, महर्षि, साधुओं की हैं घनी पगडण्डियाँ ।
कोई सिखाते सिद्धियां, कोई बताते ऋद्धियां ॥
ऊंचा न चढ़, नीचा न गिर, तज धूप दे, तज दौड़ दे ।
सम शान्त होजा एक रस, ममता अहंता छोड़ दे ॥

(६)

सुखरूप सच्चित् ब्रह्मको, जो आत्म अपना जानता ।
इन्द्रादि सुरके भोग सारे ही मृषा है मानता ॥
दश, सौ, हजारों शून्य मिथ्या छोड़ लाख करोड़ दे ।
यक आत्म सच्चा ले पकड़, ममता अहंता छोड़ दे ॥

(७)

गुण तीन पाँचों भूतका, यह विश्व सब विस्तार है ।
गुण भूत जड़ निस्सार सब, तू एक द्रष्टा सार है ॥
चैतन्यकी कर होड़ प्यारे ! त्याग जड़की होड़ दे ।
तू शुद्ध है, तू बुद्ध है, ममता अहंता छोड़ दे ॥

(८)

शुभ होयं अथवा हों अशुभ सब वासनाएं छांट दे ।
निर्मूल करके वासना, अध्यासकी जड़ काट दे ॥
अध्यास खुजली कोढ़ है, कोढ़ी न बन, तज कोढ़ दे ।
सुख शान्ति भोला ! ले पकड़, ममता अहंता छोड़ दे ॥

मत भोगमें आसक्त हो !

(१)

है काम वैरी ज्ञानका, तज काम, हो निष्काम रे।
है अर्थ साधक काममें, मत अर्थसे रख काम रे ॥
कामार्थ कारण धर्म है, मत धर्ममें अनुरक्त हो।
कर चाह केवल मोक्षकी, मत भोगमें आसक्त हो !!

(२)

निस्सार यह संसार दुख भण्डार मायाजाल है।
ऐसा यहांपर कौन है, खाता जिसे नहिं काल है ?
फिर मित्र सुत-दारादिमें, क्यों व्यर्थ ही संसक्त हो।
यदि इष्ट निज कल्याण है, मत भोगमें आसक्त हो !!

(३)

तृष्णा जहां होवे वहां ही जान ले संसार है।
होवे नहीं तृष्णा जहां, संसारका सो पार है ॥
वैराग्य पक्का धारकर, मत भूल विषयासक्त हो।
तृष्णा न कर होजा सुखी, मत भोगमें आसक्त हो !!

(४)

है बन्ध तृष्णामात्र तृष्णा-त्याग सुखका मूल है।
तृष्णा भयंकर व्याधि है, छेदे अनेकों शूल है ॥
दे त्याग तृष्णा भोगकी, निज आत्ममें अनुरक्त हो।
तष्णा न भज, सन्तोष भज, मत भोगमें आसक्त हो !!

(५)

तू एक चेतन शुद्ध है, यह देह जड़ अपवित्र है।
तू सत्य अव्यय तत्त्व है, यह विश्व वन्ध्या-पुत्र है॥
पहिचान कर तू आपको, हे तात! संशय-मुक्त हो।
नहिं है अधिक अब जानना, मत भोगमें आसक्त हो॥

(६)

धारीं हजारों देह, सुत दारा हजारों कर चुका।
हंसता रहा, रोता रहा, सौ बार तनु धर मर चुका॥
जहँ जहँ गया, दुखही सहा, अब तो न व्याकुलचित्त हो।
ब्रह्मात्ममें तल्लीन हो, मत भोगमें आसक्त हो॥

(७)

धिक्कार है उस अर्थको, धिक्कार है उस कर्मको।
धिक्कार है उस कामको, धिक्कार है उस धर्मको॥
जिससे न होवे शान्ति, उस व्यापारमें क्यों सक्त हो?
पुरुषार्थ अन्तिम सिद्ध कर, मत भोगमें आसक्त हो॥

(८)

मन, कर्म, वाणीसे तथा, सब कर्म है तू कर चुका।
ऊंचा गया स्वर्गादिमें, पातालमें भी गिर चुका॥
अब कर्म करना छोड़ दे, भोला! न देहासक्त हो।
आसक्त हो स्व-स्वरूपमें, मत भोगमें आसक्त हो॥

होता तुरत ही शान्त है।

(१)

संसारकी सब वस्तुएं बनती बिगड़ती हैं सदा।
दशा एक-सी रहती नहीं, बदला करे हैं सर्वदा॥
आत्मा सदा है एकरस, गतक्लेश शाश्वत मुक्त है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता तुरत ही शान्त है॥

(२)

ईश्वर यहां, ईश्वर वहां, ईश्वर सिवा नहिं अन्य है।
सर्वत्र ही परिपूर्ण अच्युत एक देव अनन्य है॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता न सो फिर भ्रान्त है।
आशा जगत् की छोड़कर, होता तुरत ही शान्त है॥

(३)

क्या सम्पदा, क्या आपदा, प्रारब्धवश सब आयं हैं।
ईश्वर उन्हें नहिं भेजता, निज कर्म-वश आजायं हैं॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, रहता सदा निश्चिन्त है।
नहिं हर्षता, नहीं सोचता, होता तुरत ही शान्त है॥

(४)

सुख दुःख औ जीवन मरण, सब कर्मके आधीन है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता नहीं फिर दीन है॥
जो भोग आते भोगता, होता न भोगासक्त है।
निर्लेप रहता कर्मसे, होता तुरत ही शान्त है॥

(५)

चिन्ता किये से दुःख हो, चिन्ता बुरी फाका भला।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, सो क्यों करे चिन्ता भला ?
चिन्ता नहीं करता कभी, होता न व्याकुल-चित्त है।
रहता सुखी हर हाल, होता तुरत ही शान्त है॥

(६)

नहिं देह मैं नहिं देह मेरा, शुद्ध हूं मैं बुद्ध हूं।
कूटस्थ हूं निस्संग हूं, नहिं देह से संबद्ध हूं॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, फिर क्या उसे एकान्त है ?
बस्ती भले जंगल रहे, होता तुरत ही शान्त है॥

(७)

ले कीटसे ब्रह्मा तलक, मेरे सिवा नहिं अन्य है।
मैं पूर्ण हूं, मैं सर्व हूं, ऐसा विवेकी धन्य है॥
सम प्राप्तिमें अप्राप्तिमें, मन इन्द्रियांजित दान्त है।
नहिं देर कुछ लगती उसे, होता तुरत ही शान्त है॥

(८)

आश्चर्यमय है विश्व यह, सो वस्तुतः कुछ है नहीं।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, उसको नहीं है भय कहीं॥
निष्काम फुरणामात्रको रहता न कुछ भी चिन्त्य है।
भोला ! हुआ निश्चिन्त जो, होता तुरत ही शान्त है॥

निज आत्ममें डट जाय है !

(१)

कायिक क्रियाएँ त्यागदे, वाचिक क्रियाएँ छोड़दे।
संकल्प करना चित्तका, व्यापार सम्यक् तोड़ दे॥
जब चित्त थिरता पाय है, संसार सब हट जाय है।
साक्षी स्वयं रह जाय तब, निज आत्ममें डट जाय है॥

(२)

विष सम विषय सब जानकर, शब्दादिमें मत राग कर।
आत्मा-सुधाका पान कर, मत देहमें अनुराग कर॥
आत्मा-सुधाके पान से, विक्षेप सब छुट जाय है।
विक्षेप मिटते ही तुरत, निज आत्ममें डट जाय है॥

(३)

कर्तापने, भोक्तापनेका जब तलक अध्यास है।
तबतक समाधीके लिये, करना पड़े अभ्यास है॥
कर्तापना, भोक्तापना, अध्यास जब मिट जाय है।
कर्तव्य सब छुट जाय है, निज आत्ममें डट जाय है॥

(४)

यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है, अध्यास ऐसा मत करे।
मत हर्ष कर, मत शोक कर, रह सर्व द्वन्द्वोंसे परे॥
निर्द्वन्द्व जब हो जाय है, तब शान्ति अविचल पाय है।
संशय सभी मिट जायँ हैं, निज आत्ममें डट जाय है॥

(५)

'मन बुद्धिसे मैं हूं परे, 'नहिं ध्यान ध्याता ध्येय मैं'।
'निष्काम निस्संकल्प हूं' 'नहिं ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय मैं'॥
ऐसे निरन्तर मननसे, भ्रम-भेद सब मिट जाय है।
सब कामना निर्मूल हों, निज आत्ममें डट जाय है॥

(६)

करना न करना कर्मका, अज्ञानसे सब होय है।
तुझ आत्ममें बनता नहीं, करना न करना कोय है॥
यह तत्त्व सम्यक् जानकर, अज्ञान जड़ कट जाय है।
होता नहीं है मोह फिर, निज आत्ममें डट जाय है॥

(७)

चिन्तन करे है जब तलक नहिं ब्रह्म जाना जाय है।
चिन्तन-रहित है ब्रह्म सो चिन्तन-रहित ही पाय है॥
चिन्तन-रहित हो जाय है, सो ज्ञान सम्यक् पाय है।
सम्यक् हुआ जब ज्ञान तब निज आत्ममें डट जाय है॥

(८)

यों साधनों से ब्रह्मको, चिन्तन-रहित पहिचान कर।
कृतकृत्य नर होजाय है, ऐसा कहे हैं प्राज्ञ-नर॥
साधक भले हो सिद्ध जो चिन्तन-रहित हो जाय है।
भोला! नहीं सन्देह कुछ, निज आत्ममें डट जाय है॥

यह ही परम पुरुषार्थ है।

(१)

आसक्ति जबतक लेश है, तबतक न चिन्ता जाय है।
नहिं चित्तथिर हो जबतलक, नहिं मोक्ष-सुख नर पाय है॥
कौपीनतकमें राग हो, तो जाय रुक परमार्थ है।
निर्मूल होना राग का, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(२)

पग हाथसे क्रिया करें तो खेद काया पाय है।
पाठन-पठन यदि कीजिये, तो जीभमें श्रम आय है॥
मन खेद पावे ध्यानसे, यह बात सत्य यथार्थ है।
*व्यापार तीनों त्याग दे, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(३)

देहादि करते कार्य हैं, आत्मा सदा निर्लेप है।
यह ज्ञान सम्यक् होय जब, होता न फिर विक्षेप है॥
मन इन्द्रियाँ करती रहें, अपना न कुछ भी स्वार्थ है।
जो आगया सो कर लिया, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(४)

निष्ठा रखूं निष्कर्ममें या कर्ममें निष्ठा धरूं।
यह प्रश्न देहासक्तका है, क्या करूं क्या नहिं करूं॥
निष्कर्मसे नहिं हानि है, नहिं कर्ममें कुछ अर्थ है।
अभिमान दोनों त्याग दे, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

---

* इस पदमें व्यापार छोड़ देने को कहा गया है; वस्तुतः इसमें साधकके द्वारा किये जाने वाले पठन-पाठन, ध्यान आदिका

(५)

बैठे, चले, सोवे भले, नहिं देह में आसक्त हो।
दे कार्य करने देहको, निज आत्ममें अनुरक्त हो॥
चेष्टा करे है देह अपना अर्थ है न अनर्थ है।
नहिं सङ्ग करना देहसे, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(६)

नहिं जागनेमें लाभ कुछ, नहिं हानि कोई स्वप्नमें।
नहिं बैठनेसे जाय कुछ, नहिं आय है कुछ यत्न से॥
निर्लेप जो रहता सदा, सो सिद्ध युक्त कृतार्थ है।
नहिं त्याग हो, नहिं हो ग्रहण, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(७)

आसक्तिसे ही जन्म है, आसक्तिमें ही है मरण।
आसक्तिमें ही बन्ध है, निस्सङ्गतामें भव तरण॥
व्यासादि कहते हैं यही, श्रुतिका यही भावार्थ है।
निस्सङ्ग आत्मा है सदा, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(८)

जो कुछ दिखाई दे रहा, निस्सार सर्व अनित्य है।
नहिं गेह ही नहिं देह, पुण्यापुण्य भी नहिं नित्य है॥
सबका प्रकाशक शुद्ध संवित् एक देव समर्थ है।
भोला! उसी में जाय डट, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

विरोध नहीं है, यह तो स्थिति है इसपर भी शरीरधारी समस्त व्यापार छोड़ नहीं सकता, इसी का उत्तर आगे के पद में है।

संसारसे सो छुट गया।

(१)

संकल्प आदिक चित्तके सब धर्मसे जो हीन है।
होती सभी जिसकी क्रिया, प्रारब्धके स्वाधीन है॥
इच्छा विना चेष्टा करे निज आत्ममें है डट गया।
संसारमें दीखे भले, संसारसे सो छुट गया॥

(२)

धनकी जिसे नहिं चाह है, नहिं मित्रकी परवाह है।
आसक्ति विषयोंमें नहीं, प्रारब्धपर निर्वाह है॥
सब विश्व मटियामेट कर, जो आप भी है मिट गया।
मिटकर हुआ है आप ही, संसारसे सो छुट गया॥

(३)

गेहादिमें ममता नहीं, नहिं देहमें अभिमान है।
संतृप्त अपने आपमें नित आत्म अनुसन्धान है॥
अध्यास मटका गल गया, अज्ञान पर्दा फट गया।
विज्ञान अनुभव खुल गया, संसारसे सो छुट गया॥

(४)

मनमें नहीं विक्षेप है, नहिं बुद्धिमें कुछ भ्रान्ति है।
चिन्ता नहीं है चित्तमें, परिपूर्ण अक्षय शान्ति है॥
कामादि तस्कर भग गये, कूड़ा गया, कर्कट गया।
अक्षय खजाना रह गया, संसारसे सो छुट गया॥

(५)

सर्दी पड़े गर्मी पड़े, वर्षा झड़े तो वाह वा !
आंधी चले, पानी पड़े, बिजली गिरे तो वाह वा !!
जो होय सो होता रहे, अपना नहीं कुछ घट गया।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, संसारसे सो छुट गया॥

(६)

जंगल बुरा लगता नहीं, दंगल जिसे रुचता नहीं।
नहिं स्वर्ण लेने दौड़ता, है सर्पसे बचता नहीं॥
जीना जिसे भाता नहीं, भय मृत्युका है उठ गया।
सो धन्य है जग मन्य है, संसारसे सो छुट गया॥

(७)

नहिं शत्रु जिसका कोय है, नहिं मित्र जिसका कोय है।
स्व-स्वभावके अनुसार सब व्यवहार जिसका होय है॥
बाहर सभी करता रहे है चित्तसे सब हट गया।
मन स्वस्थ निर्मल शान्त है, संसारसे सो छुट गया॥

(८)

यह पुरुष है, यह नारि है, ऐसा जिसे नहिं ध्यान है।
सम हानि है, सम लाभ है, सम मान अरु अपमान है॥
मैं अन्य हूं, यह अन्य है, यह भेद जिसका मिट गया।
भोला ! वही हुशियार है, संसारसे सो छुट गया॥

सोचका क्या काम है ?

(१)

नहिं देह तू नहिं देह तेरा, देहसे तू भिन्न है।
कर्ता नहिं भोक्ता नहीं, कामादिकोंसे अन्य है॥
आनन्द है चिद्रूप है, सद्रूप है, निष्काम है।
कूटस्थ है, निस्संग है, फिर सोचका क्या काम है?

(२)

निःशोक है, निर्मोह है, तुझमें नहीं है भय कहीं।
रागादि मनके दोष हैं, तू मन कभी भी है नहीं॥
अज्ञान तुझमें है नहीं, बोधात्म तेरा नाम है।
निर्दोष है तू निर्विकारी, सोचका क्या काम है?

(३)

सब भूत तेरे मांहि हैं, तू सर्व भूतों मांहि है।
सर्वत्र तू परिपूर्ण है, तेरे सिवा कुछ नाहिं है॥
ममता अहंतासे रहित, सबमें रमे तू राम है।
निश्छेद्य है, निर्भेद्य है, फिर सोचका क्या काम है?

(४)

जैसे तरंगें सिन्धुसे, ये विश्व जिसमें हों उदय।
ठहरी रहें कुछ कालतक, फिर अन्तमें हो जायं लय॥
सो तू निरामय तत्त्व है, मन बुद्धि से परधाम है।
वाणी जहां नहिं जा सके, फिर सोचका क्या काम है?

(५)

विश्वास कर, विश्वास कर, मत मोहको तू प्राप्त हो।
हो आपमें सन्तुष्ट केवल आपमें सन्तृप्त हो॥
नहिं हाड़ तू, नहिं माँस है, नहिं रक्त है नहिं चाम है।
है देह तीनोंसे परे, फिर सोचका क्या काम है ?

(६)

गुणयुक्त है यह देह आता है चला फिर जाय है।
आत्मा अचल परिपूर्ण है, नहिं जाय है नहिं आय है॥
तिहुं देहका, तिहुं लोकका, तिहुं कालका विश्राम है।
घटता नहीं, बढ़ता नहीं, फिर सोचका क्या काम है ?

(७)

यह देह ठहरे कल्प तक, या आज उसका अन्त हो।
तेरा न कुछ बिगड़े वने यह जानकर निश्चिन्त हो॥
दिन रात तुझमें है नहीं, नाँही सवेरा शाम है।
तू कालका भी काल है, फिर सोचका क्या काम है ?

(८)

अध्यस्त तुझमें विश्व है, तू विश्व का आधार है।
स्वच्छन्द है, निर्द्वन्द्व है, भयमुक्त है, भवपार है॥
श्रुति सन्त सब ही कह रहे, कहता यही प्रभु श्याम है।
भोला ! नहीं है दूसरा, तो सोचका क्या काम है ?

अद्वैत है, एकत्व है।

(१)

चिन्मात्र तू भरपूर है, नहिं विश्व तुझसे भिन्न है।
फिर त्याग क्या कैसा ग्रहण, तुझसे न जब कुछ अन्य है॥
है विश्व तेरी कल्पना, तू सिद्ध अद्वय तत्त्व है।
नहिं भेद है, नहिं द्वैत है, अद्वैत है, एकत्व है॥

(२)

तू एक अव्यय, शान्त, निर्मल, स्वच्छ चिद् आकाश है।
अज्ञान तुझमें है नहीं, नहिं भ्रान्ति, नहिं अध्यास है॥
राजस नहीं, तामस नहीं, तुझमें न रंचक सत्त्व है।
निर्गुण, निरामय, एक रस, अद्वैत है, एकत्व है॥

(३)

कंकण कटक, नूपुर रुचक, नहिं कनकसे कुछ भिन्न है।
नहिं कार्यकारणसे कभी तिहुं कालमें भी अन्य है॥
जो जो जहां तू देखता, तेरा सभी भासत्व है।
तुझसे नहीं है भिन्न कुछ अद्वैत है, एकत्व है॥

(४)

'मैं हूं यही' 'मैं वह नहीं' यह भिन्नता मत मान रे।
'मैं सर्व हूं' 'सर्वात्म हूं' ऐसा निरन्तर जान रे॥
तेरे बिना नहिं अन्यका, किञ्चित् कहीं अस्तित्व है।
श्रुति सन्त सब ही कह रहे, अद्वैत है, एकत्व है॥

(५)

यह विश्व केवल भ्रान्ति है, नहिं वस्तुतः कुछ सत्य है।
नश्वर सभी तेरे सिवा, तू एक शाश्वत नित्य है॥
चिन्मात्र तू ही तत्त्व है, यह दृश्य सब निस्तत्त्व है।
निस्तत्त्वकी सत्ता कहां, अद्वैत है, एकत्व है॥

(६)

संसार सागर मांहि तू ही एक पहिले सत्य था।
अब भी तुही है एक, आगे भी रहेगा तू तथा॥
नहिं बन्ध है, नहिं मोक्ष, नहिं कर्तृत्व, नहिं भोक्तृत्व है।
सर्वत्र तू ही पूर्ण है, अद्वैत है, एकत्व है॥

(७)

निज चित्तको मत क्षोभ दे, संकल्प और विकल्पसे।
कूटस्थ भूमा ठोस हो, मत काम रख कुछ अल्पसे॥
अल्पत्व भासे भ्रान्तिमें, पर वस्तुतः पूर्णत्व है।
निर्वासना हो जा सुखी, अद्वैत है एकत्व है॥

(८)

मत ध्यान कर कुछ हृदयमें, सर्वत्र तज दे ध्यान तू।
आत्मा सदा है मुक्त तू, फिर क्या करे है ध्यान तू॥
जब दूसरा है ही नहीं, तो सर्वथा मौनत्व है।
भोला! सुखी हो, शान्त हो, अद्वैत है, एकत्व है॥

शान्ति अक्षय पायगा।

(१)

वर्षोंतलक लाखों भले ही शास्त्र तू सुनता रहे।
पढ़ता रहे या रात दिन, उपदेश भी करता रहे॥
जबतक बना है भेद 'मैं' 'तू' भय न तबतक जायगा।
जब भेद सब मिट जायगा, तब शान्ति अक्षय पायगा॥

(२)

भोगे भले बहु भोग, नाना कर्म आचरता रहे।
अथवा समाधीपर समाधी, लाख तू करता रहे॥
जबतक रहेगी वासना, बन्धन न ढेरा जायगा।
निर्वासना हो जायगा, तब शान्ति अक्षय पायगा॥

(३)

आयाससे सब हैं दुखी, कोई नहीं यह जानता।
है भोगमें ही मात्र सुख नर मूढ़ ऐसा मानता॥
निस्सीम सुख है आपमें, विश्वास जो नर लायगा।
अन्तर्मुखी हो जायगा, सो शान्ति अक्षय पायगा॥

(४)

जो खोलने या मूंदनेमें, आंखके अलसाय है।
आलस्पियोंका भूप सो ही, ब्रह्म-सुख चख पाय है॥ *
जो ब्रह्म-सुख का स्वाद ले, क्यों भोगमें ललचायगा ?
सब रस विरस हो जायंगे, जब शान्ति अक्षय पायगा॥

---

*अक्रिय ब्रह्मका सुख निश्चेष्ट पुरुष ही भोग सकता है। इसीसे उसको 'आलसियों का भूप' कहा गया है, वस्तुतः इससे

(५)

यह कर लिया, यह नहिं किया, ये द्वन्द्व सारे तोड़ दे।
धर्मार्थ तज दे, काम तज दे, मोक्ष-कांक्षा छोड़ दे॥
निरपेक्ष जब तू होयगा, निर्द्वन्द्व तब हो जायगा।
स्वच्छन्द होगा शान्त होगा, शान्ति अक्षय पायगा॥

(६)

त्यागी विषयसे द्वेष करि, नहिं संग उनका छोड़ता।
रागी विषय में राग करके, प्रेम उनसे जोड़ता॥
मत राग कर मत द्वेष कर, निस्संग तू हो जायगा।
संसर्ग से छुट जायगा, तब शान्ति अक्षय पायगा॥

(७)

है त्याग जब तक या ग्रहण, तब तक खड़ा संसार है।
नहिं त्याग करता नहिं ग्रहण, संसार से सो पार है॥
मत त्याग कर मत कर ग्रहण, स्व-स्वरूप में टिक जायगा।
संसार तरु गिर जायगा, तू शान्ति अक्षय पायगा॥

(८)

यदि प्रीति विषयों में करेगा, राग बढ़ता जायगा।
यदि द्वेष विषयों से किया, तो द्वेष दृढ़ता पायगा॥
तज राग दे, तज द्वेष दे, मन मैल सब धुल जायगा।
बालाचरण भोला ! ग्रहण कर शान्ति अक्षय पायगा॥

यहां साधारण तमोगुणी आलस्य नहीं समझना चाहिए।

विरला कहीं पर पाय है !

(१)

मन इन्द्रियां स्वाधीन कर, जो आत्म में संलग्न है ।
निज आत्म में संतृप्त है, निज आत्म में मन मग्न है ॥
नहिं स्वप्न में भी भोग में, जिसका कभी मन जाय है ।
ऐसा विवेकी धीर नर, विरला कहीं पर पाय है !!

(२)

हर्षित कभी होता नहीं, होता कभी नहिं खिन्न है ।
सुख दुःख लाभ अलाभ में, सम चित्त रहत प्रसन्न है ॥
बैठे चले, खावे पिये, जागे भले सो जाय है ।
निज लक्ष्यसे हटता न जो, विरला कहीं पर पाय है !!

(३)

सब रस विरस लगते जिसे, नहिं भोग जिसको खैंचते ।
ज्यों ईख-प्रेमी हस्तिको, नहिं निम्ब पत्त ऐंचते ॥
नहिं कामके वश हो कभी, नहिं क्रोध जिसको आय है ।
निर्लोभ संशयसे रहित, विरला कहीं पर पाय है !!

(४)

जो भोग आवें भोंगता, आसक्त पर होता नहीं ।
नहिं प्राप्त होते भोग, उनकी चाह भी करता नहीं ॥
निःशोक है निर्मोह है, नहिं भय किसी से खाय है ।
नहिं अन्यको भय दे कभी, विरला कहीं पर पायं है !!

(५)

संसार मांहीं हैं बहुत-से लोग इच्छुक भोग के ।
देखे मुमुक्षू भी घने अभ्यास करते योग के ॥
नहिं भोग जिसको चाहिये, नहिं मोक्ष जिसको भाय है ।
दुर्लभ्य ऐसा धीर है, विरला कहीं पर पाय है !!

(६)

नहिं धर्म की इच्छा जिसे, नहिं अर्थकी है कामना ।
नहिं कामकी कांक्षा जिसे नहिं मोक्ष की है भावना ॥
जीना जिसे रुचता नहीं, नहिं मृत्यु से घबराय है ।
लाखों करोड़ों मध्य में, विरला कहीं पर पाय है !!

(७)

करना विलय इस विश्वका रूचिकर जिसे लगता नहीं ।
इस विश्व के व्यापार से जो द्वेष भी करता नहीं ॥
यह दिखता भी विश्व जिसकी दृष्टिमें नहिं आय है ।
सर्वत्र देखे आप सो, विरला कहीं पर पाय है !!

(८)

कृतकृत्य है निज ज्ञान से, संतृप्त है विज्ञान से ।
सन्तुष्ट अपने आपमें, नहिं काम कुछ है ध्यान से ॥
सुनता सभी में आपको है, आपको ही गाय है ।
भोला ! नहीं ऐसे घने, विरला कहीं पर पाय है !!

सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है।

(१)

नहिं राग करता भोग में, नहिं द्वेष करता भोग से।
नहिं पास जाता योग के, नहिं दूर रहता योग से॥
नहिं इन्द्रियां होतीं विकल, नहिं रक्त है न विरक्त है।
है तृप्त अपने आप में, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

(२)

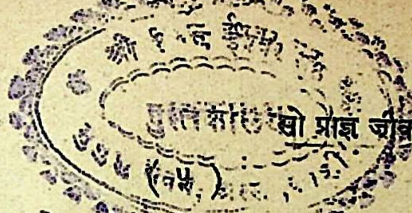
बैठे नहीं, नहिं हो खड़ा, नहिं आँख मींचे, खोलता।
जागे नहीं, सोवे नहीं, चुपका नहीं, नहिं बोलता॥
चेष्टा सभी करता रहे, फिर भी न चेष्टायुक्त है।
निस्संग कर्म अकर्मसे, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

(३)

सुख-दुःखमें शीतोष्णमें, सम चित्त रहता है सदा।
क्या मित्रको, क्या शत्रु को, सम देखता है सर्वदा॥
सब वासनाओं से रहित, निज आत्म में अनुरक्त है।
सब विश्व देखे ब्रह्ममय, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥

(४)

सुनता हुआ, या देखता, छूता हुआ या सूंघता।
लेता हुआ, देता हुआ, जगता हुआ या ऊंघता॥
आता हुआ, जाता हुआ, निज आत्म में संतृप्त है।
चेष्टा अचेष्टा से रहित, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है॥



(५)

निन्दा प्रशंसा से रहित, सम सम्पदा सम आपदा ।
देता नहीं, लेता नहीं, सम चित्त निर्संग सर्वदा ।।
जिसको विषम भासे नहीं, सर्वत्र समता युक्त है ।
मन अमन बालक सा चलन, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ।।

(६)

कामिनि उपस्थित देखकर, नहिं क्षोभ मन में लाय है ।
विकराल मृत्यु समीप में ही, देख नहिं घबराय है ।।
विह्वल न जिसका हो हृदय, जो धैर्य से संयुक्त है ।
तल्लीन अपने आपमें, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ।।

(७)

गो, श्वान, गज, चाण्डाल, ब्राह्मण, वेद पाठी एक सम ।
सर्वत्र समदर्शी सदा, जिसको न कोई वेश-कम ।।
सम आत्म सबमें जानकर, रहता सदा समचित्त है ।
योगी वही ज्ञानी वही, सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ।।

(८)

हिंसा कभी करता नहीं, फंसता दया में भी नहीं ।
ऊंचा कभी नहिं शिर करे, नहिं दीन भी होता कहीं ।।
विस्मय कभी पाता नहीं, होता न सँशययुक्त है ।
जगमन्य भोला ! धन्य सो ही प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ।।

सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(१)

होता जहाँपर मोह है, भय शोक होते हैं वहां ।
रहता नहीं जहं मोह है, भय शोक नहिं आते तहां ॥
निर्मोह जो नर होगया, संसारसे सो तर चुका ।
करना उसे नहिं शेष है, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(२)

आशा करे जो भोग की, सो भोग में फंस जाय है ।
जो द्वेष करता भोग से, सो भी न छुट्टी पाय है ॥
आशा निराशा से छुटा, सो योग सम्यक् कर चुका ।
फल ज्ञानका भी पा चुका, सब कर चुका ! सबधर चुका !!

(३)

जिस जीवमें हैं वासना, उसके लिये संसार है ।
जो जीव है निर्वासना, भवसिन्धुसे सो पार है ॥
निर्वासना जो हो गया, सो मोक्ष-पदपर चढ़ चुका ।
आनन्द अक्षय लूटता, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(४)

ममता नहीं पुत्रादिमें, नहिं देह में अभिमान है ।
सब ब्रह्म है, नहिंअन्य है, ऐसा जिसे दृढ़ ज्ञान है ॥
सम्पूर्ण आशा गल गयी हैं, चित्त जिसका मर चुका ।
सो जीगया जी, जीगया, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(५)

जो वस्तु लेना चाहता है, राग उसको खींचता।
जो छोड़ना है चाहता, तो द्वेष निश्चय इंचता ॥
लेता नहीं देता नहीं, सो द्वन्द्व से हो पर चुका।
निर्द्वन्द्वका नहिं कृत्य कुछ, सबकर चुका ! सब धर चुका !!

(६)

'मैं हूँ तपोधन, सिद्ध हूं' ऐसा नहीं जो मानता।
'मैं मुक्त हूं', मैं युक्त हूं', यह भी नहीं जो जानता ॥
अभिमान जिसका छुट गया, माया किला कर सर चुका।
स्वाराज्य अपना पा चुका, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(७)

आकाश घटके बाह्य है, आकाश घट भीतर यथा।
है ब्रह्म सबके देह में, बाहर बसा भीतर तथा ॥
सो ब्रह्म हूं मैं आप ही, दृढ़ धारणा जो कर चुका।
कैवल्य पद सो पा चुका, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

(८)

ज्यों एक ही रवि विश्वभर में है उजाला कर रहा।
ब्रह्माण्डभर को भासता त्यों ब्रह्म सब में भर रहा ॥
सो ब्रह्म मेरा आत्म है, यह भाव जिसमें भर चुका।
भोला ! हुआ भरपूर सो, सब कर चुका ! सब धर चुका !!

भय शोक सब भग जाय है।

(१)

जब बोध-रवि होता उदय, अज्ञान-तम हट जाय है।
संसार स्वप्ना होय है, भ्रम-भेद सब मिट जाय है॥
तब मोह-निद्रा त्यागकर, स्व-स्वरुप में जग जाय है।
होता मुमुक्षू है सुखी, भय शोक सब भग जाय है॥

(२)

सुत दार आदिक हों घने, पुष्कल भले धन पाइये।
बहु भाँति भोगन भोगिये, सम्राट् भी बन जाइये॥
जबतक न होवे त्याग सम्यक् हाथ सुख नहिं आय है।
जब त्याग सम्यक् होय है, भय शोक सब भग जाय है॥

(३)

कर्तव्य जलती आग है, सबको जलाती है यही।
सो वृक्ष कैसे हो हरा, हो आग जिसमें लग रही॥
कर्तव्यसे छुट जाय सो, इस आग से बच जाय है।
पीयुष-धारा नित पिये, भय शोक सब भग जाय है॥

(४)

भव भावनाका है बना, किञ्चित् नहीं परमार्थ है।
अध्यस्त है यह विश्व केवल ब्रह्म तत्त्व यथार्थ है।
संकल्प जब मिट जाय है, यह विश्व सब उड़ जाय है॥
सुखरूप ही रह जाय है, भय शोक सब भग जाय है॥

(५)

आत्मा सदा ही प्राप्त है, नहिं दूर है नहिं पास है।
नहिं आत्म पाने के लिये, करना पड़े आयास है॥
संकल्प देता छोड़ जो, सो आपमें टिक जाय है।
जब आप अपना पाय है, भय शोक सब भग जाय है॥

(६)

व्यामोहका परदा पड़ा, सो आत्मसुखमें आड़ है।
व्यामोह तिलकी ओटने, ढक लीन आत्म पहाड़ है॥
व्यामोह परदा जाय हट, तब मर्म सब खुल जाय है।
बे-ओट सुख है दीखता, भय शोक सब भग जाय है॥

(७)

यह विश्व सब है कल्पना, आत्मा सदा ही मुक्त है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, होता न संशययुक्त है॥
जो धीर संशयमुक्त है, सो बोध सम्यक् पाय है।
रहता सदा ही शान्त है, भय शोक सब भग जाय है॥

(८)

चिन्मात्र केवल ब्रह्म है, संसार जड़ है कल्पना।
चैतन्य जड़ नहिं मिल सकें, भवकी नहीं सम्भावना॥
ऐसे विवेकी ज्ञानकर, निष्काम हो सुख पाय है।
भोला ! अकामी धीरका, भय शोक सब भग जाय है॥

उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(१)

मैं हूं यही, मैं वह नहीं,' ऐसी न करता कल्पना।
'सर्वात्मा है, नहिं अन्य है,' ऐसी जिसे दृढ़ भावना॥
योगी महा, मौनी महा, संकल्पसे मन शून्य है।
चौदह भुवन तिहुँ लोकमें, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(२)

विक्षेप जिसमें है नहीं, जिसमें नहीं है एकाग्रता।
अति बोध जिसको है नहीं, जिसमें नहीं है मूढ़ता॥
उपशान्ततम, सुख-दुःख सम, शीतोष्ण मांहि प्रसन्न है।
ऋषि, मुनि, मनुजमें, देवमें, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(३)

स्वाराज्य भिक्षावृत्ति दोनों एक-सी जो जानता।
नहिं लाभ और अलाभमें है भेद रंचक मानता॥
जन बन जिसे हैं एक-से, होता कभी नहिं खिन्न हैं।
क्रीड़ा करे निज आत्ममें, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(४)

नहिं कामसे कुछ काम है, नहिं धर्मसे कुछ वासता।
नहिं अर्थसे है अर्थ कुछ, नहिं मोक्ष ही है चाहता॥
करने न करनेसे पृथक्, निज आत्ममें संलग्न है।
निर्द्वन्द्व है, स्वच्छन्द है, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(५)

कर्तव्य नहिं संसारमें, मनमें नहीं अनुराग है।
लेना जिसे कुछ है नहीं, करना न कुछ भी त्याग है॥
इच्छा अनिच्छा रहित तन, प्रारब्धके आधीन है।
सब कुछ करे, कुछ नहिं करे, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(६)

रंचक न जिसमें मोह है, नहिं विश्वका जिसको पता।
चिन्तन कभी करता नहीं, नहिं जानता है मुक्तता॥
संकल्प सीमासे परे, शिव रूप एक अनन्य है।
नहिं भेद जिसको भासता, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(७)

जो विश्वको हो देखता, सो विश्वको लय भी करे।
किसका करे सो लय भला, नहिं विश्व ही जिसको फुरे॥
देखे नहीं है देखता भी, वासना सब छिन्न है।
उस सम धनी कोई नहीं, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

(८)

जो द्वैतको हो देखता, 'मैं ब्रह्म हूं' चिन्तन करे।
जब द्वैत ही नहिं देखता, चिन्तन करे फिर क्या सरे॥
चिन्तन रहित जो धीर है, सो धन्य है जगमन्य है।
भोला ! सुखी है एक सो, उस-सा सुखी क्या अन्य है ?

करना उसे क्या शेष है ?

(१)

विक्षेप मनका जिस पुरुषके देखनेमें आय है।
करता वही मन रोकनेको, शम दमादि उपाय है॥
जिस प्राज्ञ नरकी दृष्टिमें, नहिं, द्वैत भासे लेश है।
विक्षेप भी होता नहीं, करना उसे क्या शेष है ?

(२)

संसारके विक्षेपसे जो धीर सम्यक् मुक्त है।
करता हुआ सब कार्य भी, होता न कर्मासक्त है॥
इच्छा समाधीकी नहीं, विक्षेपसे नहिं द्वेष है।
सम विषम जिसको एक सम, करना उसे क्या शेष है॥

(३)

मनमें नहीं है वासना, आनन्दसे भरपूर है।
निन्दा प्रशंसासे रहित, तिहुँ एषणासे दूर है॥
नहिं मानसे अपमानसे पाता कभी जो क्लेश है।
निश्चिन्त है, निर्द्वन्द्व है, करना उसे क्या शेष है ?

(४)

निष्कर्म नहिं, नहिं कर्म है, नहिं हेय, नहिं आदेय है।
प्रारब्ध-वश आ जाय जो, सुखसे उसे कर लेय है॥
नहिं राग जिसको कर्ममें, निष्कर्ममें नहिं द्वेष है।
स्वच्छन्द है, सविवेक है, करना उसे क्या शेष है ?

(५)

निर्वासना, आलम्ब बिनु, सब बन्धनोंसे मुक्त है।
आशा-निराशा-हीन, केवल ब्रह्ममें आसक्त है॥
सूखे हुए तरु पातका, जैसे न निश्चित देश है।
निश्चित नहीं जिसकी क्रिया, करना उसे क्या शेष है ?

(६)

संसार सब निस्सार है, परमात्म केवल सार है।
संसारसे है मुक्त, जिसका आत्म ही आधार है॥
ब्रह्माण्ड भर है देश, जिसकी दृष्टिमें न विदेश है।
निष्काम आत्माराम है, करना उसे क्या शेष है ?

(७)

करता रमण निज आत्ममें है, चित्त शीतल स्वच्छ है।
इन्द्रादि की पदवी मिले, तो भी समझता तुच्छ है॥
क्या स्वर्गमें क्या नरकमें, जिसके लिये न विशेष है।
सर्वत्र समता देखता, करना उसे क्या शेष है ?

(८)

प्रारब्ध-वश चेष्टा करे, संकल्पसे मन शून्य है।
हाथी चढ़े, पैदल फिरे, नहिं है अधिक नहिं न्यून है॥
सब वेष जिसके वेष या कोई न जिसका वेष है।
भोला ! सभी सो कर चुका, करना उसे क्या शेष है ?

सो धीर शोभा पाय है।

(१)

श्रुति-वाक्य सुनकर मूढ़ कोई तो न श्रद्धा लाय है।
कोई समझनेको उसे मन रोकनेको जाय है॥
मनमें विवेकी धीरके, श्रुतिवाक्य झट आ जाय है।
होता तुरत ही है सुखी, सो धीर शोभा पाय है॥

(२)

देहेन्द्रियां मन कर्म करते, मैं कभी करता नहीं।
आता नहीं, जाता नहीं, चलता नहीं, फिरता नहीं॥
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, निर्लेप सो हो जाय है।
निर्लेप हो, निष्पाप हो, सो धीर शोभा पाय है॥

(३)

आत्मा अनात्मा जानता, तत्त्वज्ञ है, मर्मज्ञ है।
ज्यों अज्ञ करता कार्य सब, होता न फिर भी अज्ञ है॥
करता हुआ व्यवहार भी, व्यवहारमें नहिं आय है।
निस्संग रहता है सदा, सो धीर शोभा पाय है॥

(४)

चिन्ता अचिन्तासे रहित, निज आत्ममें विश्राम है।
नहिं रूप किञ्चित् देखता,- सुनता न कोई नाम है॥
नहिं सोचता नहिं जानता, करता न कुछ करवाय है।
अभिमान जिसका जल गया, सो धीर शोभा पाय है

(५)

करता समाधी है नहीं, जिसमें नहीं विक्षेप है।
नहिं मोक्ष ही है चाहतो, रहता सदा निर्लेप है॥
सब विश्व कल्पित जानकर, नहिं चित्तको भटकाय है।
संलग्न रहता आत्ममें, सो धीर शोभा पाय है॥

(६)

होता जिसे अभिमान है, सो नहिं करे तो भी करे।
अभिमानसे जो शून्य है, करता हुआ भी नहिं करे॥
अभिमानसे जो मुक्त है, सब कुछ करे करवाय है।
फिर भी नहीं कुछ भी करे, सो धीर शोभा पाय है॥

(७)

'चेष्टा करूँ, बैठा रहूं,' उठता न यह संकल्प है।
जो आय है सो लेय कर, नहिं चित्तमांहि विकल्प है॥
निज आत्ममें निश्चल रहे नहिं क्षोभ मनमें लाय है।
करता हुआ भी नहिं करे, सो धीर शोभा पाय है॥

(८)

उद्विग्न मन होता नहीं, सन्तुष्ट भी होता नहीं।
निःशोक है, निर्मोह है, हँसता नहीं रोता नहीं॥
करता रहे है देहसे, मनमें न हलचल आय है।
भोला! जहां होवे तहाँ, सो धीर शोभा पाय है॥

मरसे अमर हो जाये है।

(१)

साधन करे बहु भांतिके, देहाभिमानी मूढ़ नर।
एकाग्र मन होता नहीं, भागे इधरसे है उधर॥
नर धीर नश्वर भोगमें, मन ही नहीं भटकाय है।
अमरात्ममें मनको लगा, मरसे अमर हो जाय है॥

(२)

जबतक न जाने तत्त्वको, कोई सुखी होता नहीं॥
मन होय वश अथवा नहीं, सुखसे कभी सोता नहीं॥
जो जान लेता तत्त्वको, संसारमें सो जाय है।
होता तुरत ही है सुखी, मरसे अमर हो जाय है।

(३)

आत्मा अमर, परिपूर्ण है, अक्षय निरामय तत्त्व है॥
शिव शुद्ध है, अज बुद्ध है, संसार यह निस्तत्त्व है।
ऐसा विवेकी जानकर, निश्चिन्त हो सुख पाय है।
निज आत्ममें संतृप्त हो, मरसे अमर हो जाय है।

(४)

हो मोक्ष नाहीं कर्मसे श्रम लाख बार उठाइये।
ऊँचे कभी चढ़ जाइये, नीचे कभी गिर जाइये॥
नर धीर नश्वर कर्ममें, नहिं व्यर्थ दुःख उठाय है।
क्षण मात्रके विज्ञानसे, मरसे अमर हो जाय है॥



(५)

जो ब्रह्म होना चाहता, नहिं प्राप्त होता ब्रह्म को।
जो होय इच्छासे रहित, सो तुरत पाता ब्रह्मको॥
निष्काम आत्माराम नर, झट ब्रह्म दर्शन पाय है।
तल्लीन होकर ब्रह्ममें, मरसे अमर हो जाय है॥

(६)

संसारपोषक मूढ़ जन, श्रुतिवाक्यके आधार बिन।
करते हजारों यत्न हैं, छुटता नहीं संसार-वन॥
नर धीर सद्गुरु वाक्यपर विश्वास पक्का लाय है।
संसारकी जड़ काटकर, मरसे अमर हो जाय है॥

(७)

जो मूढ़ चाहे शान्तिको, सो मूढ़ शान्ति न पाय है।
अभ्यास करनेसे न सम्यक्, शान्ति मनमें आय है॥
त्यागी विवेकी प्राज्ञ नर, नहिं भोगमें ललचाय है।
निर्णय तुरत कर तत्त्वका, मरसे अमर हो जाय है॥

(८)

जो सत्य माने दृश्य, उसको आतम दर्शन हो कहां।
मिथ्या जहाँ जग हो गया, आत्मा यहां आत्मा वहां॥
परिपूर्ण सबमें भासता, भ्रम भेद सब मिट जाय है।
भोला! मिटा भ्रमभेद जहँ, मरसे अमर हो जाय है॥

साम्राज्य अविचल पाय है।

(१)

देहाभिमानी मूढ़का नहिं होय चित्त निरोध है।
जबतक न होवे चित्त थिर, होता न सम्यक् बोध है॥
तत्त्वज्ञ स्वात्माराम का, थिर चित्त झट हो जाय है।
होता सहज ही शान्त सो, साम्राज्य अविचल पाय है॥

(२)

जग सत्य कोई मानता है, शून्य कोई मानता।
लाखों करोड़ों मध्य विरला तत्त्वको पहिचानता॥
जो ब्रह्मको है जानता, सो ब्रह्म ही हो जाय है।
नहिं गर्भमें फिर आय है, साम्राज्य अविचल पाय है॥

(३)

संसारपोषक मूढ़ नर, चिन्तन करे है तत्त्वका।
नहिं तत्त्वको है जानता, नहिं मोह जाता चित्तका॥
नर धीर संशयसे रहित, कुछ भी न मनमें ध्याय है।
चिन्तनरहित हो जाय सो, साम्राज्य अविचल पाय है॥

(४)

आधारबिन होता नहीं, जो मोक्षको है चाहता।
जबतक न हो आधारबिन, नहिं तत्त्व तबतक पावता॥
निष्काम आलम्बन रहित, स्व स्वरूपमें टिक जाय है।
स्व-स्वरूपमें-टिक जाय सो, साम्राज्य अविचल पाय है॥

(५)

शब्दादि व्याधन देखते ही मूढ़ नर भय खाय है।
एकाग्रताको सिद्ध करने, घुस गुहामें जाय है॥
नर धीर विषयन देखकर, किञ्चित् नहीं भय खाय है।
ऐसा विवेकी सहज ही, साम्रा य अविचल पाय है॥

(६)

निर्वासना नर-केसरीको, दूरसे ही देखकर।
हाथी विषय भग जायँ हैं, कोई इधर कोई उधर॥
ज्ञानी विषय है भोगता, वशमें न उनके आय है।
रहता सदा निर्लेप सो, साम्राज्य अविचल पाय है॥

(७)

निःशंक निश्चल चित्त योगी यत्न कुछ करता नहीं।
स्वाभाविकी सारी क्रिया, होती रहे हैं आप ही॥
सुखसे सुने, देखे, छुवे, सूँघे, सहज ही खाय है।
ऐसा विरागी प्राज्ञ नर, साम्राज्य अविचल पाय है॥

(८)

मन शुद्ध निर्मल बुद्धि नर, नहिं ध्याय है न विचारता।
वेदान्त सुननेमात्र से ही, तत्त्वको निर्धारता॥
मनवृत्ति ब्रह्माकार जिसकी, अन्य जो नहिं ध्याय है।
भोला! नहीं सन्देह सो, साम्राज्य अविचल पाय है॥

है जन्म उसका ही सफल ।

(१)

शुभ या अशुभ हो कार्य जो, जिस कालमें आ जाय है ।
आग्रह विना कर लेय है, नहिं सोच मनमें लाय है ॥
चेष्टा करे सब बाल ज्यों, नहिं इन्द्रियां होतीं विकल ।
नहिं राग हो नहिं द्वेष हो, है जन्म उसका ही सफल ॥

(२)

निर्द्वन्द्व सुख है भोगता, निर्द्वन्द्व पाता ज्ञान है ।
निर्द्वन्द्व पाता नित्य सुख, पाता वही विज्ञान है ॥
निर्द्वन्द्व होता है अचल, निर्द्वन्द्व होता है अटल ।
निर्द्वन्द्व नर हो जाय जो, है जन्म उसका ही सफल ॥

(३)

कर्तापना, भोक्तापना, जो आत्ममें नहिं मानता ।
मन वृत्तियां सब क्षीण होतीं, आत्मको पहिचानता ॥
मन-वृत्ति जिसकी क्षीण हों, अन्तःकरण होवे विमल ।
सो ही सुखी है विश्वमें, है जन्म उसका ही सफल ॥

(४)

मानी तथा कामी जनोंका, चित्त रहता भ्रान्त है ।
निर्द्वन्द्व निष्कामी पुरुष, रहता सदा ही शान्त है ॥
निस्संगतासे वर्तता, जलमें रहे जैसे कमल ।
ज्ञानी अमानी धन्य सो, है जन्म उसका ही सफल ॥

(५)

ममता नहीं पुत्रादिमें, नहिं देह में अभिमान है।
आसक्ति विषयों में नहीं है, लाभ हानि समान है॥
है मान अरु अपमान सम, व्यवहार है सीधा सरल।
नहिं लेश जिसमें दम्भ छल, है जन्म उसका ही सफल॥

(६)

श्रोत्रीय ब्राह्मण देवता या तीर्थ का सेवन करे।
देवाँगना, राजा तथा पुत्रादिका दर्शन करे॥
मनमें उठे नहिं वासना, ज्यों कूट जो रहता अचल।
त्यागी भले ही हो गृही, है जन्म उसका ही सफल॥

(७)

सेवक तथा पुत्रादिके उपहास से धिक्कार से।
मन में न जिसके खेद हो, नहिं हर्ष होवे प्यार से॥
रहता सदा ही एक-सा, आवे न जिसमें हल न चल।
सो वीर है, सो धीर है, है जन्म उसका ही सफल॥

(८)

हंसता हुआ हंसता नहीं, रोता हुआ रोता नहीं।
जगता हुआ जगता नहीं, सोता हुआ सोता नहीं॥
ऊपर विषादी भासता भीतर नहीं है चल विचल।
भोला! वही है जी रहा, है जन्म उसका ही सफल॥

भव-सिन्धुमें सो पार है ।

(१)

सर्वत्र आत्मा देखता, आकारसे जो हीन है ।
अभिमान भी करता नहीं, होता न किञ्चित् दीन है ॥
संकल्प करता है नहीं, नहिं आय चित्त विकार है ।
होता न उसका नाश है, भव-सिन्धु से सो पार है ॥

(२)

न अज्ञ, नहिं करता हुआ भी कर्म, होता व्यग्र है ।
करता हुआ भी नहिं करे, सो ज्ञानियों में अग्र है ॥
निज रूप में संलग्न मन, होता न विक्याकार है ।
दीखे भले संसार में, भव-सिन्धु से सो पार है ॥

(३)

आनन्द से है बैठता, आनन्द से सो जाय है ।
आनन्द से बाहर फिरे, आनन्द से घर आय है ॥
आनन्दका आचार है, आनन्द का व्यवहार है ।
भोजन करे सुख शान्ति से, भव-सिन्धु से सो पार है ॥

(४)

करता हुआ व्यवहार सब, मन में न लाता क्षोभ है ।
गम्भीर सागर की तरह, रहता सदा निःक्षोभ है ॥
सब क्लेश मनके गल गये हैं, चित्त ब्रह्माकार है ।
निर्वैर प्यारा सर्वका, भव-सिन्धु सो पार है ॥

(५)

नर अज्ञ विषयन त्यागता, फिर भी रहे आसक्त है।
नर प्राज्ञ विषयन भोगता, होता न विषयासक्त है॥
कर्तार ईश्वर मानता, बनता नहीं कर्तार है।
निर्लेप करता है क्रिया, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(६)

देहाभिमानी मूढ़ नर, धन धाम से है भागता।
सुख प्राप्त करने के लिये, पुत्रादिको है त्यागता॥
नहिं राग ही, नहिं त्याग ही, नर धीर को दरकार है।
आशा पिशाची से छुटा, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(७)

क्या सत्य है, क्या है असत्, सन्देह करता अज्ञ है।
यह सत्य है, यह है असत्, जाने भलीविधि विज्ञ है॥
जो तत्त्वको है जानता, ढोता नहीं भव-भार है।
देखे तमाशा विश्व का, भव-सिन्धु से सो पार है॥

(८)

कर्तापना भोक्तापना, सब देहका व्यापार है।
आत्मा सदा निर्लेप है, करता न कुछ व्यवहार है॥
जिस प्राज्ञका आरम्भ सब, प्रारब्ध के अनुसार है।
भोला ! वही तत्त्वज्ञ है, भव-सिन्धु से सो पार है॥

सो धन्य है, सो मन्य है।

(१)

जो देखता सुनता हुआ, छूता हुआ या सूंघता।
खाता हुआ, पीता हुआ, जगता हुआ या ऊंघता॥
समबुद्धि रहता है सदा, होता नहीं मन खिन्न है।
सो धीर है, सो वीर है, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(२)

जो धीर नर आकाश सम, रहता सदा निर्लेप है।
होता किसी भी काल में, जिसको नहीं विक्षेप है॥
साधन सभी सो कर चुका, करना उसे नहिं अन्य है।
तत्त्वज्ञ सो, मर्मज्ञ सो, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(३)

सम्पूर्ण विषयन त्यागकर, जो ब्रह्म में है लग रहा।
संसारसे है सो रहा, निज आत्म में है जग रहा॥
आनन्द अक्षय भोगता, जो नित्य एक अनन्य है।
योगी वही, ज्ञानी वही, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(४)

जो आप अपना जान करके आपमें ही मग्न है।
संतृप्त अपने आप में है, आप में संलग्न है॥
बस्ती बुरी लगती नहीं, रुचता नहीं आरण्य है।
सो शुद्ध है, सो बुद्ध है, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(५)

महदादि जितना है जगत्, केवल कथन ही मात्र है।
किञ्चित् यहाँ नहिं द्वैत है, अद्वैत है, चिन्मात्र है॥
चिन्मात्र सो मैं आप हूं, मुझसे नहीं सो भिन्न है।
ऐसा जिसे विश्वास है, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(६)

भ्रममात्र सारा विश्व है, परमार्थ से कुछ भी नहीं।
शिव तत्व, शाश्वत नित्य, फुरणामात्र ही है, हर कहीं॥
प्रज्ञानघन, आनन्दघन, अद्वैत एक अजन्य है।
ऐसा जिसे निश्चय हुआ, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(७)

अभ्यास सो नर कर चुका, वैराग्य भी सो कर चुका।
कीन्हा श्रवण भी मनन भी, अरु ध्यान भी सो धर चुका॥
जिस धीरको यह ज्ञान है, ब्रह्मात्म प्रत्यगभिन्न है।
नहिं शेष उसको जानना, सो धन्य है, सो मन्य है॥

(८)

बहु रूपसे है भासता, निज आत्म को पहिचानता।
देहादिमें नहिं दृष्टि दे, सब दृश्य मिथ्या मानता॥
सो युक्त है, सो मुक्त है, सो ब्रह्म है, ब्रह्मण्य है।
भोला! सभी सो पा चुका, सो धन्य है, सो मन्य है॥

अवधूत किसका नाम है ?

(१)

ले देहसे मन बुद्धि तक, संसार जो है भासता।
सो सर्व माया मात्र है, किञ्चित् नहीं परमार्थता॥
ममता अहंता से रहित, जो प्राज्ञ नर निष्काम है।
माया अविद्या से परे, अवधूत उसका नाम है॥

(२)

अक्षय निरामय तत्त्व ही, सब विश्व में भरपूर है।
सो तत्व सबका आप है, नहिं पास है, नहिं दूर है॥
विद्या नहीं, नहिं विश्व ही, नहिं देह का कुछ काम है।
सर्वात्म ही है देखता, अवधूत उसका नाम है॥

(३)

मतिमन्द अति आयास से, मनको करे एकाग्र है।
एकाग्रता छूटी जहां, होने लगे मन व्यग्र है॥
जो द्वैत ही नहिं देखता, निश्चिन्त्य आत्माराम है।
निरपेक्ष है, निर्द्वन्द्व है, अवधूत उसका नाम है॥

(४)

नर मूढ़ सुनकर तत्त्व को भी, मूढ़ता नहिं त्यागता।
आसक्त रहता भोगमें, नहिं योग में है लागता॥
आत्मानुरागी धीर जिसको भोग से उपराम है।
है योग उसको सिद्ध ही, अवधूत उसका नाम है॥

(५)

ज्ञानाग्नि सम्यक् बालकर, सब कर्म दीन्हे हैं जला।
निज तत्त्वको है जानता, ज्यों हाथमें हो आंवला॥
करता रहे है कर्म सब, फिर भी न करता काम है।
आकाश सम निर्लेप है, अवधूत उसका नाम है॥

(६)

जिस निर्विकारी धीरमें, नहिं हर्ष है न विषाद है।
नहिं काम है, नहिं क्रोध है, नहिं लोभ है, न प्रमाद है॥
नहिं ग्राह्य है, नहिं त्याज्य है, नहिं दण्ड है, नहिं साम है।
नहिं पिण्ड, नहिं ब्रह्माण्ड ही, अवधूत उसका नाम है॥

(७)

जिसमें नहीं कर्तापना, भोक्तापना, गम्भीरता।
निर्भयपना, ज्ञानीपना, दानीपना, अरु धीरता॥
मन धर्म सारे छोड़कर, निज आत्ममें विश्राम है।
नहिं भेद जिसको भासता, अवधूत उसका नाम है॥

(८)

नहिं स्वर्ग जहँ, नहिं है नरक, नहिं लोक, नहिं परलोक है।
नहिं वेद जहँ, नहिं वेद्य है, नहिं बन्ध है, नहिं मोक्ष है॥
नहिं विष्णु जहँ नहिं रुद्र है, नहिं ब्रह्म है, नहिं आत्म है।
भोला! नहीं श्रुति कह सके, अवधूत उसका नाम है॥ *

---

* अवधूतका तत्त्व यानी स्वरूप सब उपाधियों से रहित मन-वाणीका अविषय है।

अवधूतकी पहिचान क्या ?

(१)

नहिं लाभकी इच्छा करे, नहिं हानिकी चिन्ता करे।
जीवन नहीं है चाहता, नहिं मृत्युसे किञ्चित् डरे॥
संतृप्त अपने आपमें, सम मान अरु अपमान है।
सम मित्र है, सम शत्रु, यह अवधूतकी पहिचान है॥

(२)

निन्दा करे नहिं दुष्टकी, स्तुति न करता शिष्टकी।
चिन्ता करे न अनिष्टकी, इच्छा करे नहिं इष्टकी॥
सुख दुःख दोनों एक सम हैं, स्वर्ण रेत समान है।
भ्रम-भेदसे अति दूर, यह अवधूतकी पहिचान है॥

(३)

संसारसे नहिं द्वेष है, निज दर्शकी नहिं आस है।
संसार तो है ही नहीं, जो आप है, सो पास है॥
सर्वत्र आत्मा भासता, नहिं दूसरे का भान है।
विद्या-अविद्या-मुक्त, यह अवधूतकी पहिचान है॥

(४)

पुत्रादिमें नहिं नेह है, देहादिमें नहिं राग है।
इच्छा नहीं है भोगकी, निज आत्ममें अनुराग है॥
ज्ञाता नहीं नहिं ज्ञेय है, भासे जिसे नहिं ज्ञान है।
त्रिपुटी रहित परिपूर्ण, यह अवधूतकी पहिचान है॥

(५)

मिल जाय सो पी लेय है, आ जाय सो खा लेय है।
जो प्राप्त हो सो भोगता, नहिं लेय है, नहिं देय है॥
सन्तुष्ट मन, शीतल हृदय, गम्भीर धीर महान है।
निरपेक्ष, आत्माराम, यह अवधूतकी पहिचान है॥

(६)

यह देह जावे या रहे, तत्त्वज्ञ नहिं चिन्ता करे।
जो आय है, सो जाय है, फिर सोच क्यों किसका करे॥
आत्मा नहीं हैं इन्द्रियां, आत्मा नहीं मन प्राण है।
जाने इन्हें निस्तत्त्व, यह अवधूतकी पहिचान है॥

(७)

निज आत्ममें करता रमण, संशय कभी करता नहीं।
देखे तमाशा विश्वका, शिर बोझ है धरता नहीं॥
कल्याण सबका चाहता, अपना किया कल्याण है।
निर्द्वन्द्व है, स्वच्छन्द, यह अवधूतकी पहिचान है॥

(८)

ममता अहंतासे रहित, कर्तापना, भोक्तापना।
सर्वज्ञता, अल्पज्ञता, सब जानता है कल्पना॥
भोला नहीं ज्ञानी नहीं, नहिं ज्ञान नहिं अज्ञान है।
चिन्मात्र, संवित्-शुद्ध, यह अवधूतकी पहिचान है॥

वैसा हि विरला जानता।

(१)

सम्पूर्ण विषयोंसे विमुख, मनमें न रंचक वासना।
सुख-सिन्धुमें मन मग्न है, जो आशका है दास ना॥
ब्रह्मादिकोंके भोगको भी तुच्छ तृण सम मानता।
ऐसे विरागी धीरको, वैसा हिं विरला जानता॥

(२)

नहिं देखता भी देखता, नहिं बोलता भी बोलता।
नहिं जानता भी जानता, नहिं डोलता भी डोलता॥
अभिमान करता भी कभी, करता नहीं अभिमानता।
ऐसे अमानी सन्तको, वैसा हि विरला जानता॥

(३)

स्वच्छन्द भी परतन्त्र है, परतन्त्र भी स्वच्छन्द है।
करता हुआ कर्ता नहीं, द्वन्द्वों सहित निर्द्वन्द्व है॥
करता रहे आरम्भ भी, आरम्भ नहिं है ठानता।
ऐसे परम गम्भीरको, वैसा हि विरला जानता॥

(४)

आत्मा-सुधाका पान करके तृप्त है जो हो गया।
नानापना है मिट गया, संसार जिसका खो गया॥
विक्षिप्त- सा है दीखता, जिसमें नहीं अज्ञानता।
ऐसे विवेकी भूपको, वैसा हि विरला जानता॥

(५)

सोता हुआ सोता नहीं, नहिं स्वप्न में भी शयन है।
जगता हुआ जगता नहीं, बेचैनमें भी चैन है॥
किञ्चित् न रखता पास, फिर भी पूर्ण है श्रीमानता।
ऐसे अनोखे सेठको, वैसा हि विरला जानता॥

(६)

चिन्ता-सहित है दीखता, फिर भी न चिन्तायुक्त है।
मन बुद्धिवाला भासता, मन बुद्धिसे निर्मुक्त है॥
दीखे भले ही खिन्न, पर जिसमें नहीं है खिन्नता।
गम्भीर ऐसे धीर को, वैसा हि विरला जानता॥

(७)

नहिं है सुखी, नहिं है दुखी, रागी नहीं, न विरक्त है।
साधक नहीं, नहिं सिद्ध ही, नहिं बद्ध है, नहिं मुक्त है॥
किञ्चन अकिञ्चन भी नहीं, नहिं शून्यता, नहिं पूर्णता।
ऐसे निराले पूर्णको, वैसा हि विरला जानता॥

(८)

भिक्षुकपने राजापने में मानता नहिं भेद है।
संसार मिथ्या स्वप्न हैं, ऐसा समझ बिनु खेद है॥
शोभन अशोभन एक सम भोला चतुर सम मानता।
ऐसे अकथ अवधूतको, वैसा हि विरला जानता॥

ब्रह्मज्ञान भक्ति प्रकाश (ले०—स्वामी जीवादास जी महाराज)

संसार में सब प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि मनुष्य को मनन करने की शक्ति दी गई है उसमें बुद्धि, तर्कना, विचार, क्षमा, शील, दया, सहानुभूति आदि अनेक शक्तियों का कोष भरा पड़ा है। जो कि अन्य प्राणियों को परमात्मा द्वारा प्रदान नहीं किया गया। मनुष्य अपने विवेक एवं बुद्धि के द्वारा अपनी आत्मा का इतना ऊँचा विकास कर सकता है कि वह परमात्मा नहीं तो परमात्मा की एक विशेष विभूति कहलाने का दावा कर सकता है। उदाहरण प्रत्यक्ष जैसे कृष्ण आदि।

टुक विचार करने पर यह बात प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाती है कि एक साधारण मनुष्य अपनी आत्मा का इतना ऊँचा विकास क्योंकर कर सकता है? वह अपने अध्ययन, मनन, तप, जप, भजन, त्याग, सत्य और वैराग्य के प्रभाव से। अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। इस पुस्तक में निर्गुण कवितावन्द छन्द भजन आदि दिये गये हैं। जिसका कहीं २ अर्थ भी दिया हुआ है मू० २।।) डाक व्यय ।।।) अलग।

ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी भोले बाबाजी द्वारा रचित

वेदान्त छन्दावली

प्रथम भाग (आठवां संस्करण) मूल्य ।≈)
दूसरा भाग (चतुर्थ संस्करण) मूल्य ।।)
तीसरा भाग (तृतीय संस्करण) मूल्य ।।)
चौथा भाग (प्रथम संस्करण) मूल्य ।।)

ज्ञान-वैराग्य-छन्दावली

प्रथम भाग (प्रथम संस्करण) मूल्य ।।≈)
दूसरा भाग (प्रथम संस्करण) मूल्य ।।≈)

पता—देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाज़ार, देहली।

The
akilin,

market

Yesterda
e to ma
go

all
he have
ast

२६-११-९६

translast

The stare do not

B

dog

water

c whater is rani rain

rita

d Shetha is going

read dai

e I d reds dali

came

f Johen cums my h

g moheni is runing

h sun has risen in

4½

16